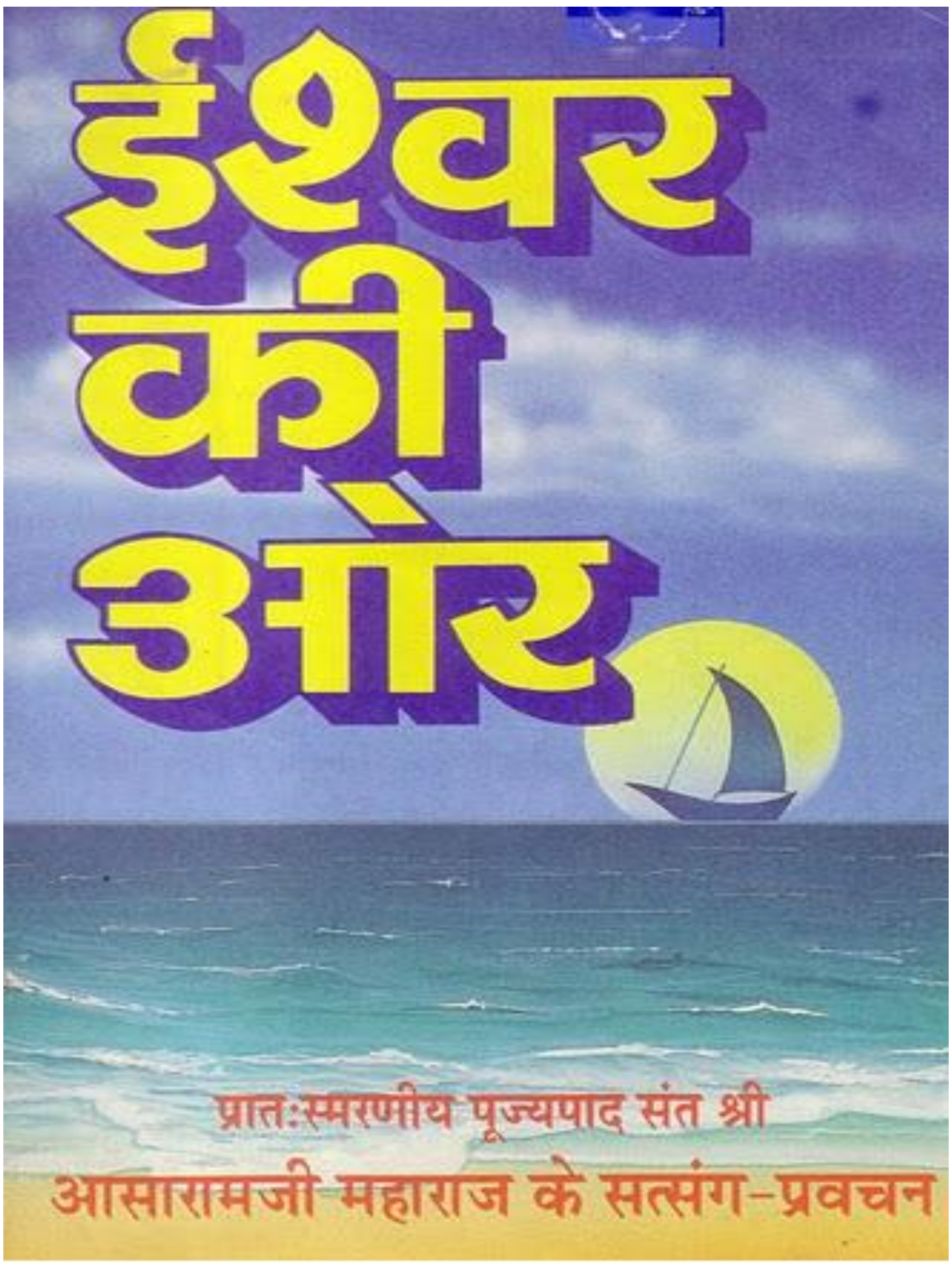
ईश्वर की ओर
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी महाराज के सत्संग-प्रवचन

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य

संत श्री आसारामजी बापू

के सत्संग प्रवचनों में से नवनीत

ईश्वर की ओर

ईश्वर की ओर4

मोहनिशा से जागो41

केवल निधि61

ज्ञानयोग67

ज्ञानगोष्ठी74

दत्त और सिद्ध का संवाद80

चिन्तन कणिका84

प्रार्थना87

ईश्वर की ओर

(मार्च 1982, में आश्रम में चेटिचंड, चैत शुक्ल दूज का ध्यान योग शिविर चल रहा है । प्रातः काल में साधक भाई बहन पूज्य श्री के मधुर और पावन सान्निध्य में ध्यान कर रहे हैं । पूज्य श्री उन्हें ध्यान द्वारा जीवन और मृत्यु की गहरी सतहों में उतार रहें हैं| जीवन के गुप्त रहस्यों का अनुभव करा रहे हैं । साधक लोग ध्यान में पूज्यश्री की धीर, गम्भीर, मधुर वाणी के तंतु के सहारे अपने अन्तर में उतरते जा रहे हैं । पूज्य श्री कह रहे हैं:)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शन्म्॥

'इन्द्रिय विषयों में विरक्त, अहंकार का अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दु:ख और दोषों को देखना (यह ज्ञान है) ।'

आज तक कई जन्मों के कुटुम्ब और परिवार तुमने सजाये धजाये । मृत्यु के एक झटके से वे सब छुट गये । अतः अभी से कुटुम्ब का मोह मन ही मन हटा दो ।

यदि शरीर की इज्जत आबरु की इच्छा है, शरीर के मान मरतबे की इच्छा है तो वह आध्यात्मिक राह में बड़ी रुकावट हो जायेगी । फेंक दो शरीर की ममता को । निर्दोष बालक जैसे हो जाओ ।

इस शरीर को बहुत सँभाला । कई बार इसको नहलाया, कई बार खिलाया पिलाया, कई बार घुमाया, लेकिन... लेकिन यह शरीर सदा फरियाद करता ही रहा । कभी बीमारी कभी अनिद्रा कभी

जोड़ों में दर्द कभी सिर में दर्द, कभी पचना कभी न पचना । शरीर की गुलामी बहुत कर ली । मन ही मन अब शरीर की यात्रा कर लो पूरी । शरीर को कब तक मैं मानते रहोगे बाबा...!

अब दृढ़तापूर्वक मन से ही अनुभव करते चलो कि तुम्हारा शरीर दरिया के किनारे घूमने गया । बेंच पर बैठा । सागर के सौन्दर्य को निहार रहा है । आ गया कोई आखिरी झटका । तुम्हारी गरदन झुक गयी । तुम मर गये...

घर पर ही सिरदर्द हुआ या पेट में कुछ गड़बड़ हुई, बुखार आया और तुम मर गये...

तुम लिखते लिखते अचानक हक्के बक्के हो गये । हो गया हार्टफेल । तुम मर गये...

तुम पूजा करते करते, अगरबत्ती करते करते एकदम सो गये । आवाज लगायी मित्रों को , कुटुम्बियों को, पत्नी को । वे लोग आये । पूछाः क्या हुआ... क्या हुआ? कुछ ही मिन्टों में तुम चल बसे...

तुम रास्ते पर चल रहे थे । अचानक कोई घटना घटी, दुर्घटना हुई और तुम मर गये...

निश्चित ही कुछ न कुछ निमित्त बन जायेगा तुम्हारी मौत का । तुमको पता भी न चलेगा । अतः चलने से पहले एक बार चलकर देखो । मरने से पहले एक बार मरकर देखो । बिखरने से पहले एक बार बिखरकर देखो ।

दृढ़तापूर्वक निश्चय करो कि तुम्हारी जो विशाल काया है, जिसे तुम नाम और रुप से 'मैं' करके सँभाल रहे हो उस काया का, अपने देह का अध्यास आज तोड़ना है । साधना के आखिरी शिखर पर पँहुचने के लिए यह आखिरी अड़चन है । इस देह की ममता से पार होना पड़ेगा । जब तक

यह देह की ममता रहेगी तब तक किये हुए कर्म तुम्हारे लिए बंधन बने रहेंगे । जब तक देह में आसक्ति बनी रहेगी तब तक विकार तुम्हारा पीछा न छोड़ेगा । चाहे तुम लाख उपाय कर लो लेकिन जब तक देहाध्यास बना रहेगा तब तक प्रभु के गीत नहीं गूँज पायेंगे । जब तक तुम अपने को देह मानते रहोगे तब तक ब्रह्म साक्षात्कार न हो पायेगा । तुम अपने को हड्डी, मांस, त्वचा, रक्त, मलमूत्र, विष्टा का थैला मानते रहोगे तब तक दुर्भाग्य से पिण्ड न छूटेगा । बड़े से बड़ा दुर्भाग्य है जन्म लेना और मरना । हजार हजार सुविधाओं के बीच कोई जन्म ले, फर्क क्या पड़ता है? दुःख झेलने ही पड़ते हैं उस बेचारे को ।

हृदयपूर्वक ईमानदारी से प्रभु को प्रार्थना करो किः

'हे प्रभु ! हे दया के सागर ! तेरे द्वार पर आये हैं । तेरे पास कोई कमी नहीं । तू हमें बल दे, तू हमें हिम्मत दे कि तेरे मार्ग पर कदम रखे हैं तो पँहुचकर ही रहें । हे मेरे प्रभु ! देह की ममता को तोड़कर तेरे साथ अपने दिल को जोड़ लें |'

आज तक अगले कई जन्मों में तुम्हारे कई पिता रहे होंगे, माताएँ रही होंगी, कई नाते रिश्तेवाले रहे होंगे । उसके पहले भी कोई रहे होंगे । तुम्हारा लगाव देह के साथ जितना प्रगाढ़ होगा उतना ये नाते रिश्तों का बोझ तुम्हारे पर बना रहेगा । देह का लगाव जितना कम होगा उतना बोझ हल्का होगा । भीतर से देह की अहंता टूटी तो बाहर की ममता तुम्हें फँसाने में समर्थ नहीं हो सकती ।

भीतर से देह की आसाक्ति टूट गयी तो बाहर की ममता तुम्हारे लिए खेल बन जायेगी । तुम्हारे जीवन से फिर जीवनमुक्ति के गीत निकलेंगे ।

जीवन्मुक्त पुरुष सबमें होते हुए, सब करते हुए भी सुखपूर्वक जीते हैं, सुखपूर्वक खाते पीते हैं, सुखपूर्वक आते जाते हैं, सुखपूर्वक स्वस्वरुप में समाते हैं ।

केवल ममता हटाना है । देहाध्यास हट गया तो ममता भी हट गई । देह की अहंता को हटाने के लिए आज स्मशानयात्रा कर लो । जीते जी मर लो जरा सा । डरना मत । आज मौत को बुलाओः 'हे मौत ! तू इस शरीर पर आज उतर ।'

कल्पना करो कि तुम्हारे शरीर पर आज मौत उतर रही है । तुम्हारा शरीर ढीला हो गया । किसी निमित्त से तुम्हारे प्राण निकल गये । तुम्हारा शव पड़ा है । लोग जिसको आज तक 'फलाना भाई… फलाना सेठ… फलाना साहब …' कहते थे, उसके प्राण पखेरु आज उड़ गये । अब वह लोगों की नजरों में मुर्दा होकर पड़ा है । हकीम डॉक्टरों ने हाथ धो लिये हैं । जिसको तुम इतना पालते पोसते थे, जिसकी इज्जत आबरु को सँभालने में व्यस्त थे, वह शरीर आज मरा पड़ा है सामने । तुम उसे देख रहे हो । भीड़ इकठ्ठी हो गयी । कोई सचमुच में आँसू बहा रहा है, कोई झूठमूठ का रो रहा है ।

तुम चल बसे । शव पड़ा है । लोग आये, मित्र आये, पड़ोसी आये, साथी आये, स्नेही आये, टेलिफोन की घण्टियाँ खटख़टायी जा रही हैं, टेलिग्राम दिये जा रहे हैं । मृत्यु होने पर जो होना चाहिए वह सब किया जा रहा है ।

यह आखिरी ममता है देह की, जिसको पार किए बिना कोई योगी सिद्ध नहीं बन सकता, कोई साधक ठीक से साधना नहीं कर सकता, ठीक से सौभाग्य को उपलब्ध नहीं हो सकता । यह अंतिम अड़चन है । उसे हटाओ ।

मैं अरु मोर तोर की माया ।

बश कर दीन्हीं जीवन काया॥

तुम्हारा शरीर गिर गया, ढह गया । हो गया 'रामनाम सत है' । तुम मर गये । लोग इकट्ठे हो गये । अर्थी के लिए बाँस मँगवाये जा रहे हैं । तुम्हें नहलाने के लिए घर के अंदर ले जा रहे हैं

। लोगो ने उठाया । तुम्हारी गरदन झुक गयी । हाथ पैर लथड़ रहे हैं । लोग तुम्हें सँभालकर ले जा रहे हैं । एक बड़े थाल में शव को नहलाते हैं । लेकिन ...

लेकिन वह चमत्कार कहाँ... ? वह प्रकाश कहाँ... ? वह चेतना कहाँ... ?

जिस शरीर ने कितना कितना कमाया, कितना कितना खाया, जिसको कितना कितना सजाया, कितना कितना दिखाया, वह शरीर आज शव हो गया । एक श्वास लेना आज उसके बस की बात नहीं । मित्र को धन्यवाद देना उसके हाथ की बात नहीं । एक संत फकीर को हाथ जोड़ना उसके बस की बात नहीं ।

आज वह पराश्रित शरीर बेचारा, शव बेचारा चला कूच करके इस जँहा से । जिस पर इतने 'टेन्शन (तनाव) थे, जिस जीवन के लिए इतना खिंचाव तनाव था उस जीवन की यह हालत ? जिस शरीर के लिए इतने पाप और सन्ताप सहे वह शरीर आज इस परिस्थिति में पड़ा है ! देख लो जरा मन की आँख से अपने शरीर की हालत । लाचार पड़ा है । आज तक जो 'मैं ... मैं ...' कर रहा था, अपने को उचित समझ रहा था, सयाना समझ रहा था, चतुर समझ रहा था, देख लो उस चतुर की हालत । पूरी चतुराई खाक में मिल गई । पूरा **known unknown**(ज्ञात अज्ञात) हो गया । पूरा ज्ञान एक झटके में समाप्त हो गया। सब नाते और रिश्ते टूट गये । धन और परिवार पराया हो गया ।

जिनके लिए तुम रात्रियाँ जगे थे, जिनके लिए तुमने मस्तक पर बोझ उठाया था वे सब अब पराये हो गये बाबा... ! जिनके लिए तुमने पीड़ाएँ सहीं , वे सब तुम्हारे कुछ नहीं रहे । तुम्हारे इस प्यारे शरीर की यह हालत ...!!

मित्रों के हाथ से तुम नहलाये जा रहे हो । शरीर पोंछा न पोंछा , तौलिया घुमाया न घुमाया और तुम्हें वस्त्र पहना दिये । फिर उसे उठाकर बाँसों पर सुलाते हैं । अब तुम्हारे शरीर की यह हालत ! जिसके लिए तुमने बड़ी बड़ी कमाइयाँ कीं, बड़ी बड़ी विद्याएँ पढ़ीं, कई जगह लाचारियाँ कीं, तुच्छ जीवन के लिए गुलामी की, कइयों को समझाया, सँभाला, वह लाचार शरीर, प्राण पखेरु के निकल जाने से पड़ा है अर्थी पर ।

जीते जी मरने का अनुभव कर लो । तुम्हारा शरीर वैसे भी तो मरा हुआ है । इसमें रखा भी क्या है ?

अर्थी पर पड़े हुए शव पर लाल कपड़ा बाँधा जा रहा है । गिरती हुई गरदन को सँभाला जा रहा है । पैरों को अच्छी तरह रस्सी बाँधी जा रही है, कहीं रास्ते में मुर्दा गिर न जाए । गरदन के इर्दगिर्द भी रस्सी के चक्कर लगाये जा रहे हैं । पूरा शरीर लपेटा जा रहा है । अर्थी बनानेवाला बोल रहा है: 'तू उधर से खींच' दूसरा बोलता है : 'मैंने खींचा है, तू गाँठ मार ।'

लेकिन यह गाँठ भी कब तक रहेगी ? रस्सियाँ भी कब तक रहेंगी ? अभी जल जाएँगी... और रस्सियों से बाँधा हुआ शव भी जलने को ही जा रहा है बाबा !

धिक्कार है इस नश्वर जीवन को ... ! धिक्कार है इस नश्वर देह की ममता को... ! धिक्कार है इस शरीर के अध्यास और अभिमान को...!

अर्थी को कसकर बाँधा जा रहा है । आज तक तुम्हारा नाम सेठ, साहब की लिस्ट (सूची) में था । अब वह मुर्दे की लिस्ट में आ गया । लोग कहते हैं : 'मुर्दे को बाँधो जल्दी से ।' अब ऐसा नहीं कहेंगे कि 'सेठ को, साहब को, मुनीम को, नौकर को, संत को, असंत को बाँधो...' पर कहेंगे, 'मुर्दे को बाँधो । '

हो गया तुम्हारे पूरे जीवन की उपलब्धियों का अंत । आज तक तुमने जो कमाया था वह तुम्हारा न रहा । आज तक तुमने जो जाना था वह मृत्यु के एक झटके में छूट गया । तुम्हारे 'इन्कमटेक्स' (आयकर) के कागजातों को, तुम्हारे प्रमोशन और रिटायरमेन्ट की बातों को, तुम्हारी उपलब्धि और अनुपलब्धियों को सदा के लिए अलविदा होना पड़ा ।

हाय रे हाय मनुष्य तेरा श्वास ! हाय रे हाय तेरी कल्पनाएँ ! हाय रे हाय तेरी नश्वरता ! हाय रे हाय मनुष्य तेरी वासनाएँ ! आज तक इच्छाएँ कर रहा था कि इतनों पाया है और इतना पाँऊगा, इतना जाना है और इतना जानूँगा, इतना को अपना बनाया है और इतनों को अपना बनाँऊगा, इतनों को सुधारा है, औरों को सुधारुँगा ।

अरे! तू अपने को मौत से तो बचा ! अपने को जन्म मरण से तो बचा ! देखें तेरी ताकत । देखें तेरी कारीगरी बाबा !

तुम्हारा शव बाँधा जा रहा है । तुम अर्थी के साथ एक हो गये हो । स्मशानयात्रा की तैयारी हो रही है । लोग रो रहे हैं । चार लोगों ने तुम्हें उठाया और घर के बाहर तुम्हें ले जा रहे हैं । पीछे पीछे अन्य सब लोग चल रहे हैं ।

कोई स्नेहपूर्वक आया है, कोई मात्र दिखावा करने आये है । कोई निभाने आये हैं कि समाज में बैठे हैं तो...

दस पाँच आदमी सेवा के हेतु आये हैं । उन लोगों को पता नहीं के बेटे ! तुम्हारी भी यही हालत होगी । अपने को कब तक अच्छा दिखाओगे ? अपने को समाज में कब तक 'सेट' करते रहोगे ? सेट करना ही है तो अपने को परमात्मा में 'सेट' क्यों नहीं करते भैया ?

दूसरों की शवयात्राओं में जाने का नाटक करते हो ? ईमानदारी से शवयात्राओं में जाया करो । अपने मन को समझाया करो कि तेरी भी यही हालत होनेवाली है । तू भी इसी प्रकार उठनेवाला है, इसीप्रकार जलनेवाला है । बेईमान मन ! तू अर्थी में भी ईमानदारी नहीं रखता ? जल्दी करवा रहा है ? घड़ी देख रहा है ? 'आफिस जाना है... दुकान पर जाना है...' अरे ! आखिर में तो स्मशान में जाना है ऐसा भी तू समझ ले । आफिस जा, दुकान पर जा, सिनेमा में जा, कहीं भी जा लेकिन आखिर तो स्मशान में ही जाना है । तू बाहर कितना जाएगा ?

ऐ पागल इन्सान ! ऐ माया के खिलौने ! सदियों से माया तुझे नचाती आयी है । अगर तू ईश्वर के लिए न नाचा, परमात्मा के लिए न नाचा तो माया तेरे को नचाती रहेगी । तू प्रभुप्राप्ति के लिए न नाचा तो माया तुझे न जाने कैसी कैसी योनियों में नचायेगी ! कहीं बन्दर का शरीर मिल जायगा तो कहीं रीछ का, कहीं गंधर्व का शरीर मिल जाएगा तो कहीं किन्नर का । फिर उन शरीरों को तू अपना मानेगा । किसी को अपनी माँ मानेगा तो किसी को बाप, किसी को बेटा मानेगा तो किसी को बेटी, किसी को चाचा मानेगा तो किसी को चाची, उन सबको अपना बनायेगा । फिर वहाँ भी एक झटका आयेगा मौत का... और उन सबको भी छोड़ना पड़ेगा, पराया बनना पड़ेगा । तू ऐसी यात्राएँ कितने युगों से करता आया है रे ? ऐसे नाते रिश्ते तू कितने समय से बनाता आया है ?

'मेरे पुत्र की शादी हो जाय... बहू मेरे कहने में चले... मेरा नौकर वफादार रहे... दोस्तों का प्यार बना रहे...' यह सब ऐसा हो भी गया तो आखिर कब तक ?' प्रमोशन हो जाए... हो गया । फिर क्या ? शादी हो जाए... हो गई शादी । फिर क्या ? बच्चे हो जायें ... हो गये बच्चे भी । फिर क्या करोगे ? आखिर में तुम भी इसी प्रकार अर्थी में बाँधे जाओगे । इसी प्रकार कन्धों पर उठाये जाओगे । तुम्हारे देह की हालत जो सचमुच होनेवाली है उसे देख लो । इस सनातन सत्य से कोई बच नहीं सकता । तुम्हारे लाखों रुपये तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते । तुम्हारे लाखों परिचय तुम्हें बचा नहीं सकते । इस घटना से तुम्हें गुजरना ही होगा । अन्य सब घटनाओं से तुम बच सकते हो लेकिन इस घटना से बचानेवाला आज तक पृथ्वी पर न कोई है, न हो पाएगा । अतः इस अनिवार्य मौत को तुम अभी से ज्ञान की आँख द्वारा जरा निहार लो ।

तुम्हारी प्राणहीन देह को अर्थी में बाँधकर लोग ले जा रहे हैं स्मशान की ओर । लोगों की आँखो में आँसू हैं । लेकिन आँसू बहानेवाले भी सब इसी प्रकार जानेवाले हैं । आँसू बहाने से जान न छूटेगी । आँसू रोकने से भी जान न छूटेगी । शव को देखकर भाग जाने से भी जान न छूटेगी । शव को लिपट जाने से भी जान न छूटेगी । जान तो तुम्हारी तब छूटेगी जब तुम्हें आत्म साक्षात्कार होगा । जान तो तुम्हारी तब छूटेगी जब संत का कृपा प्रसाद तुम्हें पच जाएगा । जान तुम्हारी तब छूटेगी जब ईश्वर के साथ तुम्हारी एकता हो जाएगी ।

भैया ! तुम इस मौत की दुर्घटना से कभी नहीं बच सकते । इस कमनसीबी से आज तक कोई नहीं बच सका ।

आया है सो जाएगा राजा रंक फकीर ।

किसीकी अर्थी के साथ 50 आदमी हों या 500 आदमी हों, किसीकी अर्थी के साथ 5000 आदमी हो या मात्र पांच आदमी हों, इससे फर्क क्या पड़ता है ? आखिर तो वह अर्थी अर्थी है, शव शव ही हैं ।

तुम्हारा शव उठाया जा रहा है । किसीने उस पर गुलाल छिड़का है, किसीने गेंदे के फूल रख दिये हैं । किसीने उसे मालाँए पहना दी हैं । कोई तुमसे बहुत निभा रहा है तो तुम पर इत्र छिड़क रहा है, स्प्रे कर रहा है । परन्तु अब क्या फर्क पड़ता है इत्र से ? स्प्रे तुम्हें क्या काम देगी बाबा... ?

शव पर चाहे ईंट पत्थर डाल दो चाहे सुवर्ण की इमारत खड़ी कर दो, चाहे फूल चढ़ा दो, चाहे हीरे जवाहरात न्योछावर कर दो, फर्क क्या पड़ता है ?

घर से बाहर अर्थी जा रही है । लोगों ने अर्थी को घेरा है । चार लोगों ने उठाया है, चार लोग साथ में है । राम... बोलो भाई राम ... । तुम्हारी यात्रा हो रही है । उस घर से तुम विदा हो रहे हो जिसके लिए तुमने कितने कितने प्लान बनाये थे । उस द्वार से तुम सदा के लिए जा रहे हो बाबा ... ! जिस घर को बनाने के लिए तुमने ईश्वरीय घर का त्याग कर रखा था, जिस घर को निभाने के लिए तुमने अपने प्यारे के घर का तिरस्कार कर रखा था उस घर से तुम मुर्दे के रुप में सदा के लिए विदा हो रहे हो । घर की दीवारें चाहे रो रही हों चाहे हँस रही हों, लेकिन तुमको तो जाना ही पड़ता है ।

समझदार लोग कह रहे हैं कि शव को जल्दी ले जाओ । रात का मरा हुआ है ... इसे जल्दी ले जाओ, नहीं तो इसके 'वायब्रेशन' ... इसके 'बैक्टीरिया' फैल जायेंगे, दूसरों को बीमारी हो जायेगी । अब तुम्हें घड़ीभर रखने की किसीमें हिम्मत नहीं । चार दिन सँभालने का किसीमें साहस नहीं । सब अपना अपना जीवन जीना चाहते हैं । तुम्हे निकालने के लिए उत्सुक हैं समझदार लोग । जल्दी करो । समय हो गया । कब पँहुचोगे ? जल्दी करो, जल्दी करो भाई... !

तुम घर से कब तक चिपके रहोगे ? आखिर तो लोग तुम्हें बाँध बूँधकर जल्दी से स्मशान ले जायेंगे ।

देह की ममता तोड़नी पड़ेगी । इस ममता के कारण तुम जकड़े गये हो पाश में । इस ममता के कारण तुम जन्म मरण के चक्कर में फँसे हो । यह ममता तुम्हें तोड़नी पड़ेगी । चाहे आज तोड़ो चाहे एक जन्म के बाद तोड़ो, चाहे एक हजार जन्मो के बाद तोड़ो ।

लोग तुम्हें कन्धे पर उठाये ले जा रहे हैं । तुमने खूब मक्खन घी खाया है, चरबी ज्यादा है तो लोगों को परिश्रम ज्यादा है । चरबी कम है तो लोगों को परिश्रम कम है । कुछ भी हो, तुम अब अर्थी पर आरुढ़ हो गये हो ।

यारों ! हम बेवफाई करेंगे।

तुम पैदल होगे हम कंधे चलेंगे ॥

हम पड़े रहेंगे तुम धकेलते चलोगे ।

यारों ! हम बेवफाई करेंगे ॥

तुम कन्धों पर चढ़कर जा रहे हो जँहा सभी को अवश्य जाना है । राम ... बोलो भाई ... राम । राम ...बोलो भाई ... राम । राम ... बोलो भाई राम ... ।

अर्थीवाले तेजी से भागे जा रहे हैं । पीछे 50 100 आदमी जा रहे हैं । वे आपस में बातचीत कर रहे हैं कि: 'भाई अच्छे थे, मालदार थे, सुखी थे ।' (अथवा) 'गरीब थे, दु:खी थे... बेचारे चल बसे... ।'

उन मूर्खों को पता नहीं कि वे भी ऐसे ही जायेंगे । वे तुम पर दया कर रहे हैं और अपने को शाश्वत् समझ रहे हैं नादान !

अर्थी सड़क पर आगे बढ़ रही है । बाजार के लोग बाजार की तरफ भागे जा रहे हैं । नौकरीवाले नौकरी की तरफ भागे जा रहे हैं । तुम्हारे शव पर किसीकी नजर पड़ती है वह 'ओ ... हो ...' करके फिर अपने काम की तरफ , अपने व्यवहार की तरफ भागा जा रहा है । उसको याद भी नहीं आती कि मैं भी इसी प्रकार जानेवाला हूँ, मैं भी मौत को उपलब्ध होनेवाला हूँ । साइकिल, स्कूटर, मोटर पर सवार लोग शवयात्रा को देखकर ' आहा... उहू...' करते आगे भागे जा रहे हैं, उस व्यवहार को सँभालने के लिए जिसे छोड़कर मरना है उन मूर्खो को । फिर भी सब उधर ही जा रहे हैं ।

अब तुम घर और स्मशान के बीच के रास्ते में हो । घर दूर सरकता जा रहा है... स्मशान पास आ रहा है । अर्थी स्मशान के नजदीक पहुँची । एक आदमी स्कूटर पर भागा और स्मशान में लकड़ियों के इन्तजाम में लगा । स्मशानवाले से कह रहा है: 'लकड़ी 8 मन तौलो, 10 मन तौलो, 16 मन तौलो । आदमी अच्छे थे इसलिए लकड़ी ज्यादा खर्च हो जाए तो कोई बात नहीं ।'

जैसी जिनकी हैसियत होती है वैसी लकड़ियाँ खरीदी जाती हैं, लेकिन अब शव 8 मन में जले या 16 मन में , इससे क्या फर्क पड़ता है ? धन ज्यादा है तो 10 मन लकड़ी ज्यादा आ जाएगी, धन कम है तो दो पाँच मन लकड़ी कम आ जाएगी, क्या फर्क पड़ता है इससे ? तुम तो बाबा हो गये पराये ।

अब स्मशान बिल्कुल नजदीक आ गया है । शकुन करने के लिए वहाँ बच्चों के बाल बिखेरे जा रहे हैं । लड्डू लाये थे साथ में, वे कुत्तों को खिलाये जा रहे हैं ।

जिसको बहुत जल्दी है वे लोग वहीं से खिसक रहे हैं । बाकी के लोग तुम्हें वहाँ ले जाते हैं जहाँ सभी को जाना होता है ।

लकड़ियाँ जमानेवाले लकड़ियाँ जमा रहे हैं । दो पाँच मन लकड़ियाँ बिछा दी गयीं । अब तुम्हारी अर्थी को वे उन लकड़ियों पर उतार रहे हैं । बोझा कंधों से उतरकर अब लकड़ियों पर पड़ रहा है । लेकिन वह बोझा भी कितनी देर वहाँ रहेगा ?

घास की गड्डियाँ, नारियल की जटायें, माचिस, घी और बत्ती सँभाली जा रही है । तुम्हारा अंतिम स्वागत करने के लिए ये चीजें यहाँ लायी गयी हैं । अंतिम अलविदा...

अपने शरीर को तुमने हलवा पूरी खिलाकर पाला या रुखी सूखी रोटी खिलाकर टिकाया इससे अब क्या फर्क पड़ता है ? गहने पहनकर जिये या बिना गहनों के जिये, इससे क्या फर्क पड़ता है ? आखिर तो वह अग्नि के द्वारा ही सँभाला जायेगा । माचिस से तुम्हारा स्वागत होगा ।

इसी शरीर के लिए तुमने ताप संताप सहे । इसी शरीर के लिए तुमने लोगों के दिल दु:खाये । इसी शरीर के लिए तुमने लोकेश्वर से सम्बन्ध तोड़ा । लो, देखो, अब क्या हो रहा है ? चिता पर पड़ा है वह शरीर । उसके ऊपर बड़े बड़े लक्कड़ जमाये जा रहे हैं । जल्दी जल जाय इसलिए छोटी लकड़ियाँ साथ में रखी जा रहीं हैं ।

सब लकड़ियाँ रख दी गयीं । बीच में घास भी मिलाया गया है, ताकि कोई हिस्सा कच्चा न रह जाय । एक भी मांस की लोथ बच न जाय । एक आदमी देख रेख करता है, 'मैनेजमेन्ट' कर रहा है । वहाँ भी नेतागिरी नहीं छूटती । नेतागिरी की खोपड़ी उसकी चालू है । 'ऐसा करो ... वैसा करो ... ' वह सूचनायें दिये जा रहा है ।

ऐ चतुराई दिखानेवाले ! तुमको भी यही होनेवाला है । समझ लो भैया मेरे ! शव को जलाने में भी अगवानी चाहिए ? कुछ मुख्य विशेषताँए चाहिए वहाँ भी ? वाह ...वाह ... !

हे अज्ञानी मनुष्य ! तू क्या क्या चाहता है ? हे नादान मनुष्य ! तूने क्या क्या किया है ? ईश्वर के सिवाय तूने कितने नाटक किये ? ईश्वर को छोड़कर तूने बहुत कुछ पकड़ा, मगर आज तक मृत्यु के एक झटके से सब कुछ हर बार छूटता आया है । हजारों बार तुझसे छुड़वाया गया है और इस जन्म में भी छुड़वाया जायेगा । तू जरा सावधान हो जा मेरे भैया !

अर्थी के ऊपर लकड़े 'फिट' हो गये हैं । तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे स्नेही मन में कुछ भाव लाकर आँसू बहा रहे हैं । कुछ स्नेहियों के आँसू नहीं आते हैं इसलिए वे शरमिंदा हो रहे हैं । बाकी के लोग गपशप लगाने बैठ गये हैं । कोई बीड़ी पीने लगा है कोई स्नान करने बैठ गया है, कोई स्कूटर की सफाई कर रहा है । कोई अपने कपड़े बदलने में व्यस्त है । कोई दुकान जाने की चिन्ता में है, कोई बाहरगाँव जाने की चिन्ता में है । तुम्हारी चिन्ता कौन करता है ? कब तक करेंगे लोग तुम्हारी चिन्ता ? तुम्हें स्मशान तक पँहुचा दिया, चित्ता पर सुला दिया, दीया सलाई दान में दी, बात पूरी हो गयी ।

लोग अब जाने को आतुर हैं । 'अब चिता को आग लगाओ । बहुत देर हो गई । जल्दी करो... जल्दी करो...' इशारे हो रहे हैं । वे ही तो मित्र थे जो तुमसे कह रहे थे : 'बैठे रहो, तुम मेरे साथ रहो, तुम्हारे बिना चैन नहीं पड़ता ।' अब वे ही कह रहे हैं : 'जल्दी करो... आग लगाओ... हम जायें... जान छोड़ो हमारी...'

वाह रे वाह संसार के मित्रों ! वाह रे वाह संसार के रिश्ते नाते । धन्यवाद... धन्यवाद... तुम्हारा पोल देख लिया ।

प्रभु को मित्र न बनाया तो यही हाल होनेवाला है । आज तक जो लोग तुम्हें सेठ, साहब कहते थे, जो तुम्हारे लंगोटिया यार थे वे ही जल्दी कर रहे हैं । उन लोगों को भूख लगी है । खुलकर

तो नहीं बोलते लेकिन भीतर ही भीतर कह रहे हैं कि अब देर नहीं करो । जल्दी स्वर्ग पँहुचाओ । सिर की ओर से आग लगाओ ताकि जल्दी स्वर्ग में जाय ।

वह तो क्या स्वर्ग में जाएगा ! उसके कर्म और मान्यताँए जैसी होंगी ऐसे स्वर्ग में वह जायेगा लेकिन तुम रोटी रुप स्वर्ग में जाओगे । तुमको यहाँ से छुट्टी मिल जायेगी ।

नारियल की जटाओं में घी डालते हैं । ज्योति जलाते हैं, तुम्हारे बुझे हुए जीवन को सदा के लिए नष्ट करने के हेतु ज्योति जलायी जा रही है । यह ब्रह्मज्ञानी गुरु की ज्योति नहीं है, यह सदगुरु की ज्योति नहीं है । यह तुम्हारे मित्रों की ज्योति है ।

जिनके लिए पूरा जीवन तुम खो रहे थे वे लोग तुम्हें यह ज्योति देंगे । जिनके पास जाने के लिए तुम्हारे पास समय न था उन सदगुरु की ज्योति तुमने देखी भी नहीं हैं बाबा !

लोग ज्योति जलाते हैं । सिर की तरफ लकड़ियों के बीच जो घास है उसे ज्योति का स्पर्श कराते हैं । घास की गड्डी को आग ने घेर लिया है । पैरों की तरफ भी एक आदमी आग लगा रहा है । भुभुक ... भुभुक ... अग्नि शुरु हो गयी । तुम्हारे ऊपर ढँके हुए कपड़े तक आग पँहुच गयी है । लकड़े धीरे धीरे आग पकड़ रहे हैं । अब तुम्हारे बस की बात नहीं कि आग बुझा लो । तुम्हारे मित्रों को जरुरत नहीं कि फायर ब्रिगेड बुला लें । अब डॉक्टर हकीमों को बुलाने का मौका नहीं है । जरुरत भी नहीं है । अब सबको घर जाना है, तुमको छोड़कर विदा होना है ।

धुआँ निकल रहा है । आग की ज्वालाएँ निकल रही हैं । जो ज्यादा स्नेही और साथी थे, वे भी आग की तपन से दूर भाग रहे हैं । चारों और अग्नि के बीच तुम्हें अकेला जलना पड़ रहा है । मित्र , स्नेही , सम्बन्धी बचपन के दोस्त सब दूर खिसक रहे हैं ।

अब ... कोई ... किसीका... नहीं । सारे सम्बन्ध ... ममता के सम्बन्ध । ममता में जरा सी आँच सहने की ताकत कहाँ है ? तुम्हारे नाते रिश्तों में मौत की एक चिनगारी सहने की ताकत कहाँ है ? फिर भी तुम संबंध को पक्के किये जा रहे हो । तुम कितने भोले महेश्वर हो ! तुम कितने नादान हो ! अब देख लो जरा सा !

अर्थी को आग ने घेरा है । लोगों को भूख ने घेरा है । कुछ लोग वहाँ से खिसक गये । कुछ लोग बचे हैं । चिमटा लिए हुए स्मशान का एक नौकर भी है । वह सँभाल करता है कि लक्कड़ इधर उधर न चला जाए । लक्कड़ गिरता है तो फिर चढ़ाता है तुम्हारे सिर पर । अब आग ने ठीक से घेर लिया है । चारों तरफ भुभुक ... भुभुक ... आग जल रही है । सिर की तरफ आग ... पैरों की तरफ आग ... बाल तो ऐसे जले मानो घास जला । मुंडी को भी आग ने घेर लिया है । मुँह में घी डाला हुआ था, बत्ती डाली हुई थी, आँखों पर घी लगाया हुआ था ।

मत कर रे भाया गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो ।

मत कर रे भाया गरव गुमान जवानीरो रंग उड़ी जावेलो ।

उड़ी जावेलो रे फीको पड़ी जावेलो रे काले मर जावेलो,

पाछो नहीं आवेलो... मत कर रे गरव ...

जोर रे जवानी थारी फिर को नी रे वेला...

इणने जातां नहीं लागे वार गुलाबी रंग उड़ी जावेलो॥

पतंगी रंग उड़ी जावेलो... मत कर रे गरव ॥

धन रे दौलत थारा माल खजाना रे...

छोड़ी जावेलो रे पलमां उड़ी जावेलो॥

पाछो नहीं आवेलो... मत कर रे गरव ।

कंई रे लायो ने कंई ले जावेलो भाया...

कंई कोनी हाले थारे साथ गुलाबी रंग उड़ी जावेलो॥

पतंगी रंग उड़ी जावेलो... मत कर रे गरव ॥

तुम्हारे सारे शरीर को स्मशान की आग ने घेर लिया है । एक ही क्षण में उसने अपने भोग का स्वीकार कर लिया है । सारा शरीर काला पड़ गया । कपड़े जल गये, कफन जल गया, चमड़ी जल गई । पैरों का हिस्सा नीचे लथड़ रहा है, गिर रहा है । चरबी को आग स्वाहा कर रही है । मांस के टुकड़े जलकर नीचे गिर रहे हैं । हाथ के पंजे और हड्डियाँ गिर रही हैं । खोपड़ी तड़ाका देने को उत्सुक हो रही हैं । उसको भी आग ने तपाया है । शव में फैले हुए 'बैक्टीरिया' तथा बचा हुआ गैस था वह सब जल गया ।

ऐ गाफिल ! न समझा था , मिला था तन रतन तुझको ।

मिलाया खाक में तुने, ऐ सजन ! क्या कहूँ तुझको ?

अपनी वजूदी हस्ती में तू इतना भूल मस्ताना ...

अपनी अहंता की मस्ती में तू इतना भूल मस्ताना ...

करना था किया वो न, लगी उल्टी लगन तुझको ॥

ऐ गाफिल ......।

जिन्होंके प्यार में हरदम मुस्तके दीवाना था...

जिन्होंके संग और साथ में भैया ! तू सदा विमोहित था...

आखिर वे ही जलाते हैं करेंगे या दफन तुझको ॥

ऐ गाफिल ...॥

शाही और गदाही क्या ? कफन किस्मत में आखिर ।

मिले या ना खबर पुख्ता ऐ कफन और वतन तुझको ॥

ऐ गाफिल ......।

पहनी हुई टेरीकोटन, पहने हुए गहने तेरे काम न आए । तेरे वे हाथ, तेरे वे पैर सदा के लिए अग्नि के ग्रास हो रहे हैं । लक्कड़ों के बीच से चरबी गिर रही है । वहाँ भी आग की लपटें उसे भस्म कर रही हैं । तुम्हारे पेट की चरबी सब जल गई । अब हड्डियाँ पसलियाँ एक एक होकर जुदा हो रही हैं ।

ओ... हो... कितना सँभाला था इस शरीर को ! कितना प्यारा था वह ! जरा सी किडनी बिगड़ गई तो अमेरिका तक की दौड़ थी । अब तो पूरी देह बिगड़ी जा रही है। कहाँ तक दौड़ोगे ? कब तक दौड़ोगे ? जरा सा पैर दुखता था, हाथ में चोट लगती थी तो स्पेश्यलिस्टों से घेरे जाते थे । अब कौन सा स्पेश्यलिस्ट यहाँ काम देगा ? ईश्वर के सिवाय कोई यहाँ सहाय न कर सकेगा । आत्मज्ञान के सिवाय इस मौत की आग से तुम्हें सदा के लिए बचाने का सामर्थ्य डॉक्टरों स्पेश्यलिस्टों के पास कहाँ है ? वे लोग खुद भी इस अवस्था में आनेवाले हैं । भले थोकबन्ध फीस ले लें, पर कब तक रखेंगे ? भले जाँच पड़ताल मात्र के लिये थप्पीबंद नोटों के बंडल ले लें, पर लेकर जायेंगे कहाँ ? उन्हें भी इसी अवस्था से गुजरना होगा ।

शाही और गदाही क्या? कफन किस्मत में आखिर ...

कर लो इकट्ठा । ले लो लम्बी चौड़ी फीस । लेकिन याद रखो : यह क्रूर मौत तुम्हें साम्यवादी बनाकर छोड़ देगी । सबको एक ही तरह से गुजारने का सामर्थ्य यदि किसीमें है तो मौत में है । मौत सबसे बड़ी साम्यवादी है । प्रकृति सच्ची साम्यवादी है ।

तुम्हारे शरीर का हाड़पिंजर भी अब बिखर रहा है । खोपड़ी टूटी । उसके पाँच सात टुकड़े हो गये । गिर रहे हैं इधर उधर । आ... हा... हा...हड्डी के टुकड़े किसके थे ? कोई साहब के थे या

चपरासी के थे ? सेठ के थे या नौकर के थे ? सुखी आदमी के थे या दु:खी आदमी के थे ? भाई के थे या माई के थे ? कुछ पता नहीं चलता ।

अब आग धीरे धीरे शमन को जा रही है । अधिकांश मित्र स्नान में लगे हैं । तैयारियाँ कर रहे हैं जाने की । कितने ही लोग बिखर गये । बाकी के लोग अब तुम्हारी आखिरी इजाजत ले रहे हैं । आग को जल की अंजलि देकर, आँखों में आँसू लेकर विदा हो रहे हैं ।

कह रहा है आसमाँ यह समाँ कुछ भी नहीं ।

रोती है शबनम कि नैरंगे जहाँ कुछ भी नहीं ॥

जिनके महलों में हजारों रंग के जलते थे फानूस ।

झाड़ उनकी कब्र पर है और निशाँ कुछ भी नहीं ॥

जिनकी नौबत से सदा गूँजते थे आसमाँ ।

दम बखुद है कब्र में अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं ॥

तख्तवालों का पता देते हैं तख्ते गौर के ।

खोज मिलता तक नहीं वादे अजां कुछ भी नहीं ॥

स्मशान में अब केवल अंगारों का ढेर बचा । तुम आज तक जो थे वह समाप्त हो गये । अब हड्डियों से मालूम करना असंभव है कि वे किसकी हैं । केवल अंगारे रह गये हैं । तुम्हारी मौत हो गई । हड्डियाँ और खोपड़ी बिखर गयी । तुम्हारे नाते और रिश्ते टूट गये । अपने और पराये के सम्बन्ध कट गये । तुम्हारे शरीर की जाति और सांप्रदायिक सम्बन्ध टूट गये । शरीर का कालापन और गोरापन समाप्त हो गया । तुम्हारी तन्दुरुस्ती और बीमारी अग्नि ने एक कर दी ।

ऐ गाफिल ! न समझा था ...

आग अब धीरे धीरे शांत हो रही है क्योंकि जलने की कोई चीज बची नहीं । कुटुम्बी, स्नेही, मित्र, पड़ोसी सब जा रहे हैं । स्मशान के नौकर से कह रहे हैं : 'हम परसों आयेंगे फूल चुनने के लिए । देखना, किसी दूसरे के फूल मिश्रित न हो जाए ।' कइयों के फूल वहाँ पड़े भी रह जाते हैं । मित्र अपनेवालों के फूल समझकर उठा लेते हैं ।

कौन अपना कौन पराया ? क्या फूल और क्या बेफूल ? 'फूल' जो था वह तो अलविदा हो गया । अब हड्डियों को फूल कहकर भी क्या खुशी मनाओगे? फूलों का फूल तो तुम्हारा चैतन्य था । उस चैतन्य से सम्बन्ध कर लेते तो तुम फूल ही फूल थे ।

सब लोग घर गये । एक दिन बीता । दूसरा दिन बीता । तीसरे दिन वे लोग पहुँचे स्मशान में । चिमटे से इधर उधर ढूँढकर अस्थियाँ इकट्ठी कर लीं । डाल रहे हैं तुम्हें एक डिब्बे में बाबा ! खोपड़ी के कुछ टुकड़े, जोड़ों की कुछ हड्डियाँ मिल गईं । जो पक्की पक्की थीं वे मिलीं, बाकी सब भस्म हो गईं ।

करीब एकाध किलो फूल मिल गये । उन्हें डिब्बे में डालकर मित्र घर ले आए हैं । समझानेवालों ने कहा : 'हड्डियाँ घर में न लाओ । बाहर रखो, दूर कहीं । किसी पेड़ की डाली पर बाँध दो । जब हरिद्वार जायेंगे तब वहाँ से लेकर जायेंगे। उसे घर में न लाओ, अपशकुन है ।'

अब तुम्हारी हड्डियाँ अपशकुन हैं । घर में आना अमंगल है। वाह रे वाह संसार ! तेरे लिए पूरा जीवन खर्च किया था । इन हड्डियों को कई वर्ष बनाने में और सँभालने में लगे । अब अपशकुन हो रहा है ? बोलते हैं : इस डिब्बे को बाहर रखो । पड़ोसी के घर ले जाते हैं तो पड़ोसी नाराज होता है कि यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारे जिगरी दोस्त के घर ले जाते हैं तो वह इन्कार कर देता है कि इधर नहीं ... दूर ... दूर ...दूर ...

तुम्हारी हड्डियाँ किसीके घर में रहने लायक नहीं हैं, किसीके मंदिर में रहने लायक नहीं हैं । लोग बड़े चतुर हैं । सोचते हैं : अब इससे क्या मतलब है ? दुनियाँ के लोग तुम्हारे साथ नाता और रिश्ता तब तक सँभालेंगे जब तक तुमसे उनको कुछ मिलेगा । हड्डियों से मिलना क्या है?

दुनियाँ के लोग तुम्हें बुलायेंगे कुछ लेने के लिए । तुम्हारे पास अब देने के लिए बचा भी क्या है ? वे लोग दोस्ती करेंगे कुछ लेने के लिए । सदगुरु तुम्हें प्यार करेंगे ... प्रभु देने के लिए । दुनियाँ के लोग तुम्हें नश्वर देकर अपनी सुविधा खड़ी करेंगे, लेकिन सदगुरू तुम्हें शाश्वत् देकर अपनी सुविधा की परवाह नहीं करेंगे । ॐ... ॐ ... ॐ ...

जिसमें चॉकलेट पड़ी थी, बिस्किट पड़े थे उस छोटे से डिब्बे में तुम्हारी अस्थियाँ पड़ी हैं । तुम्हारे सब पद और प्रतिष्ठा इस छोटे से डिब्बे में पराश्रित होकर, अति तुच्छ होकर पेड़ पर लटकाये जा रहे हैं । जब कुटुम्बियों को मौका मिलेगा तब जाकर गंगा में प्रवाहित कर देंगे ।

देख लो अपने कीमती जीवन की हालत !

जब बिल्ली दिखती है तब कबूतर आँखें बंद करके मौत से बचना चाहता है लेकिन बिल्ली उसे चट कर देती है । इसी प्रकार तुम यदि इस ठोस सत्य से बचना चाहोगे, 'मेरी मौत न होगी' ऐसा विचार करोगे अथवा इस सत्संग को भूल जाओगे फिर भी मौत छोड़ेगी नहीं ।

इस सत्संग को याद रखना बाबा ! मौत से पार कराने की कुंजी वह देता है तुम्हें । तुम्हारी अहंता और ममता तोड़ने के लिये युक्ति दिखाता है , ताकि तुम साधना में लग जाओ । इस राह पर कदम रख ही दिये हैं तो मंजिल तक पँहुच जाओ । कब तक रुके रहोगे ? हजार हजार रिश्ते और नाते तुम जोड़ते आये हो । हजार हजार संबंधियों को तुम रिझाते आये हो । अब तुम्हारी अस्थियाँ गंगा में पड़े उससे पहले अपना जीवन ज्ञान की गंगा में बहा देना । तुम्हारी अस्थियाँ पेड़ पर टँगें उससे पहले तुम अपने अहंकार को टाँग देना परमात्मा की अनुकंपा में ।

परमात्मारुपी पेड़ पर अपना अहंकार लटका देना । फिर जैसी उस प्यारे की मर्जी हो... नचा ले, जैसी उसकी मर्जी हो... दौड़ा ले ।

तेरी मर्जी पूरन हो...

ऐसा करके अपने अहंकार को परमात्मारुपी पेड़ तक पँहुचा दो ।

तीसरा दिन मनाने के लिए लोग इकट्ठे हुए हैं । हँसनेवाले शत्रुओं ने घर बैठे थोड़ा हँस लिया । रोनेवाले स्नेहियों ने थोड़ा रो लिया । दिखावा करनेवालों ने औपचारिकताएँ पूरी कर लीं ।

सभा में आए हुए लोग तुम्हारी मौत के बारे में कानाफूसी कर रहे हैं:

मौत कैसे हुई? सिर दुखता था । पानी माँगा । पानी दिया और पीते पीते चल बसे ।

चक्कर आये और गिर पड़े । वापस नहीं उठे ।

पेट दुखने लगा और वे मर गये ।

सुबह तो घूमकर आये । खूब खुश थे । फिर जरा सा कुछ हुआ । बोले : 'मुझे कुछ हो रहा है, डॉक्टर को बुलाओ ।' हम बुलाने गये और पीछे यह हो गया।

हॉस्पिटल में खुब उपचार किये, बचाने के लिए डॉक्टरों ने खूब प्रयत्न किये लेकिन मर गये । रास्ते पर चलते चलते सिधार गये। कुछ न कुछ निमित्त बन ही गया।

तीसरा दिन मनाते वक्त तुम्हारी मौत के बारे में बातें हो गई थोड़ी देर । फिर समय हो गया : पाँच से छः । उठकर सब चल दिये । कब तक याद करते रहेंगे ? लोग लग गये अपने अपने काम धन्धे में ।

अस्थियों का डिब्बा पेड़ पर लटक रहा है । दिन बीत रहे हैं । मौका आया । वह डिब्बा अब हरिद्वार ले जाया जा रहा है । एक थैली में डिब्बा डालकर ट्रेन की सीट के नीचे रखते हैं । लोग पूछते हैं: 'इसमें क्या है?' तुम्हारे मित्र बताते हैं : 'नहीं नहीं, कुछ नहीं । सब ऐसे ही है । अस्थियाँ हैं इसमें...' ऐसा कहकर वे पैर से डिब्बे को धक्का लगाते हैं । लोग चिल्लाते हैं:

'यहाँ नहीं... यहाँ नहीं ... उधर रखो ।'

वाह रे वाह संसार ! तुम्हारी अस्थियाँ जिस डिब्बे में हैं वह डिब्बा ट्रेन में सीट के नीचे रखने के लायक नहीं रहा । वाह रे प्यारा शरीर ! तेरे लिए हमने क्या क्या किया था ? तुझे सँभालने के लिए हमने क्या क्या नहीं किया ? ॐ ... ॐ ... ॐ ... !!

मित्र हरिद्वार पहुँचे हैं । पण्डे लोगों ने उन्हें घेर लिया । मित्र आखिरी विधि करवा रहे हैं । अस्थियाँ डाल दीं गंगा में, प्रवाहित हो गयीं । पण्डे को दक्षिणा मिल गई । मित्रों को आँसू बहाने थे, दो चार बहा लिये । अब उन्हें भी भूख लगी है । अब वे भी अपनी हड्डियाँ सँभालेंगे, क्योंकि उन्हें तो सदा रखनी हैं। वे खाते हैं, पीते हैं, गाड़ी का समय पूछते हैं ।

जल्दी वापस लौटना है क्योंकि आफिस में हाजिर होना है, दुकान सँभालनी है। वे सोचते हैं: 'वह तो मर गया । उसे विदा दे दी । मैं मरनेवाला थोड़े हूँ ।'

मित्र भोजन में जुट गये हैं।

आज तुमने अपनी मौत की यात्रा देखी । अपने शव की, अपनी हड्डियों की स्थिति देख ली । तुम एक ऐसी चेतना हो कि तुम्हारी मौत होने पर भी तुम उस मौत के साक्षी हो । तुम्हारी हड्डियाँ जलने पर भी तुम उससे पृथक् रहनेवाली ज्योति हो ।

तुम्हारी अर्थी जलने के बाद भी तुम अर्थी से पृथक् चेतना हो । तुम साक्षी हो, आत्मा हो । तुमने आज अपनी मौत को भी साक्षी होकर देख लिया । आज तक तुम हजारों हजारों मौत की यात्राओं को देखते आये हो ।

जो मौत की यात्रा के साक्षी बन जाते हैं उनके लिये यात्रा यात्रा रह जाती है, साक्षी उससे परे हो जाता है ।

मौत के बाद अपने सब पराये हो गये । तुम्हारा शरीर भी पराया हो गया । लेकिन तुम्हारी आत्मा आज तक परायी नहीं हुई ।

हजारों मित्रों ने तुमको छोड़ दिया, लाखों कुटुम्बियों ने तुमको छोड़ दिया, करोड़ों करोड़ों शरीरों ने तुमको छोड़ दिया, अरबों अरबों कर्मों ने तुमको छोड़ दिया लेकिन तुम्हारा आत्मदेव तुमको कभी नहीं छोड़ता ।

शरीर की स्मशानयात्रा हो गयी लेकिन तुम उससे अलग साक्षी चैतन्य हो । तुमने अब जान लिया कि:

'मैं इस शरीर की अंतिम यात्रा के बाद भी बचता हूँ, अर्थी के बाद भी बचता हूँ, जन्म से पहले भी बचता हूँ और मौत के बाद भी बचता हूँ । मैं चिदाकाश ... ज्ञानस्वरुप आत्मा हूँ । मैंने छोड़ दिया मोह ममता को । तोड़ दिया सब प्रपंच ।'

इस अभ्यास को बढ़ाते रहना । शरीर की अहंता और ममता, जो आखिरी विघ्न है, उसे इस प्रकार तोड़ते रहना । मौका मिले तो स्मशान में जाना । दिखाना अपनेको वह दृश्य ।

मैं भी जब घर में था, तब स्मशान में जाया करता था । कभी कभी दिखाता था अपने मन को कि, 'देख ! तेरी हालत भी ऐसी होगी ।'

स्मशान में विवेक और वैराग्य होता है । बिना विवेक और वैराग्य के तुम्हें ब्रह्माजी का उपदेश भी काम न आयेगा । बिना विवेक और वैराग्य के तुम्हें साक्षात्कारी पूर्ण सदगुरु मिल जायँ फिर भी तुम्हें इतनी गति न करवा पायेंगे । तुम्हारा विवेक और वैराग्य न जगा हो तो गुरु भी क्या करें ?

विवेक और वैराग्य जगाने के लिए कभी कभी स्मशान में जाते रहना । कभी घर में बैठे ही मन को स्मशान की यात्रा करवा लेना ।

मरो मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोय ।

एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होय ॥

ज्ञान की ज्योति जगने दो । इस शरीर की ममता को टूटने दो । शरीर की ममता टूटेगी तो अन्य नाते रिश्ते सब भीतर से ढीले हो जायेंगे । अहंता ममता टूटने पर तुम्हारा व्यवहार प्रभु का व्यवहार हो जाएगा । तुम्हारा बोलना प्रभु का बोलना हो जाएगा । तुम्हारा देखना प्रभु का देखना हो जाएगा । तुम्हारा जीना प्रभु का जीना हो जाएगा ।

केवल भीतर की अहंता तोड़ देना । बाहर की ममता में तो रखा भी क्या है ?

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥

देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत ।

ते ज्ञानीना चरणमां हो वन्दन अगणित ॥

भीतर ही भीतर अपने आपसे पूछो कि:

'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि देह होते हुए भी मैं अपने को देह से पृथक् अनुभव करुँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि एकांत में बैठा बैठा मैं अपने मन बुद्धि को पृथक् देखते देखते अपनी आत्मा में तृप्त होऊँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं आत्मानन्द में मस्त रहकर संसार के व्यवहार में निश्चिन्त रहूँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि शत्रु और मित्र के व्यवहार को मैं खेल समझूँगा ?'

ऐसा न सोचो कि वे दिन कब आयेंगे कि मेरा प्रमोशन हो जाएगा... मैं प्रेसिडेन्ट हो जाऊँगा ... मैं प्राइम मिनिस्टर हो जाऊँगा ?

आग लगे ऐसे पदों की वासना को ! ऐसा सोचो कि मैं कब आत्मपद पाऊँगा ? कब प्रभु के साथ एक होऊँगा ?

अमेरिका के प्रेसिडेन्ट मि कूलिज व्हाइट हाउस में रहते थे । एक बार वे बगीचे में घूम रहे थे । किसी आगन्तुक ने पूछा : 'यहाँ कौन रहता है ?'

कूलिज ने कहा : 'यहाँ कोई रहता नहीं है। यह सराय है, धर्मशाला है। यहाँ कई आ आकर चले गये, कोई रहता नहीं ।'

रहने को तुम थोड़े ही आये हो ! तुम यहाँ से गुजरने को आये हो, पसार होने को आये हो । यह जगत तुम्हारा घर नहीं है । घर तो तुम्हारा आत्मदेव है । फकीरों का जो घर है वही तुम्हारा घर है। जहाँ फकीरों ने डेरा डाला है वहीं तुम्हारा डेरा सदा के लिए टिक सकता है, अन्यत्र नहीं । अन्य कोई भी महल, चाहे कैसा भी मजबूत हो, तुम्हें सदा के लिए रख नहीं सकता ।

संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ ।

कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ॥

कूलिज से पूछा गया : ' I have come to know that Mr. Coolidge, President of America lives here. '

('मुझे पता चला है कि अमेरिका के राष्ट्रपति श्री कूलिज यहाँ रहते हैं ।')

कूलिज ने कहा : 'No, Coolidge doesnot live here. Nobody lives here. Everybody is passing through.' ('नहीं, कूलिज यहाँ नहीं रहता । कोई भी नहीं रहता । सब यहाँ से गुजर रहे हैं। ')

चार साल पूरे हुए । मित्रों ने कहा : 'फिर से चुनाव लड़ो । समाज में बड़ा प्रभाव है अपका । फिर से चुने जाओगे ।'

कूलिज बोला : 'चार साल मैंने व्हाइट हाउस में रहकर देख लिया । प्रेसिडेन्ट का पद सँभालकर देख लिया । कोई सार नहीं । अपने आपसे धोखा करना है, समय बरबाद करना है। **I have no time to waste.** अब मेरे पास बरबाद करने के लिए समय नहीं है ।'

ये सारे पद और प्रतिष्ठा समय बरबाद कर रहे हैं तुम्हारा । बड़े बड़े नाते रिश्ते तुम्हारा समय बरबाद कर रहे हैं । स्वामी रामतीर्थ प्रार्थना किया करते थे :

'हे प्रभु ! मुझे मित्रों से बचाओ, मुझे सुखों से बचाओ'

सरदार पूरनसिंह ने पूछा : 'क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? शत्रुओं से बचना होगा, मित्रों से क्या बचना है ?'

रामतीर्थ : 'नहीं, शत्रुओं से मैं निपट लूँगा, दु:खों से मैं निपट लूँगा । दु:ख में कभी आसक्ति नहीं होती, ममता नहीं होती । ममता, आसक्ति जब हुई है तब सुख में हुई है, मित्रों में हुई है, स्नेहियों में हुई है ।'

मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाता है । वे हमें बेहोशी में रखते हैं । जो करना है वह रह जाता है । जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन खप जाता है ।

तथाकथित मित्रों से हमारा समय बच जाए, तथाकथित सुखों से हमारी आसक्ति हट जाए । सुख में होते हुए भी परमात्मा में रह सको, मित्रों के बीच रहते हुए भी ईश्वर में रह सको ऐसी समझ की एक आँख रखना अपने पास ।

ॐ शांति : शांति : शांति : ! ॐ ... ॐ ... ॐ ... !!

तुम्हारे शरीर की यात्रा हो गई पूरी । मौत को भी तुमने देखा । मौत को देखनेवाले तुम द्दष्टा कैसे मर सकते हो ? तुम साक्षात् चैतन्य हो । तुम आत्मा हो । तुम निर्भय हो । तुम नि:शंक

हो । मौत कई बार आकर शरीर को झपट गई । तुम्हारी कभी मृत्यु नहीं हुई । केवल शरीर बदलते आये, एक योनि से दूसरी योनि में यात्रा करते आये ।

तुम निर्भयतापूर्वक अनुभव करो कि मैं आत्मा हूँ । मैं अपनेको ममता से बचाऊँगा । बेकार के नाते और रिश्तों में बहते हुए अपने जीवन को बचाऊँगा । पराई आशा से अपने चित्त को बचाऊँगा । आशाओं का दास नहीं लेकिन आशाओं का राम होकर रहूँगा ।

ॐ ... ॐ ... ॐ ...

मैं निर्भय रहूँगा । मैं बेपरवाह रहूँगा जगत के सुख दुःख में । मैं संसार की हर परिस्थिति में निश्चिन्त रहूँगा, क्योंकि मैं आत्मा हूँ । ऐ मौत ! तू शरीरों को बिगाड़ सकती है, मेरा कुछ नहीं कर सकती । तू क्या डराती है मुझे ?

ऐ दुनियाँ की रंगीनियाँ ! ऐ संसार के प्रलोभन ! तुम मुझे अब क्या फँसाओगे ! तुम्हारी पोल मैंने जान ली है । हे समाज के रीति रिवाज ! तुम कब तक बाँधोगे मुझे ? हे सुख और दुःख ! तुम कब तक नचाओगे मुझे ? अब मैं मोहनिशा से जाग गया हूँ ।

निर्भयतापूर्वक, दृढ़तापूर्वक, ईमानदारी और निःशंकता से अपनी असली चेतना को जगाओ । कब तक तुम शरीर में सोते रहोगे ?

साधना के रास्ते पर हजार हजार विघ्न होंगे, लाख लाख काँटे होंगे । उन सबके ऊपर निर्भयतापूर्वक पैर रखेंगे ।

वे काँटे फूल न बन जाँए तो हमारा नाम 'साधक' कैसे ?

ॐ ... ॐ ... ॐ ...

हजारों हजारों उत्थान और पतन के प्रसंगो में हम अपनी ज्ञान की आँख खोले रहेंगे । हो होकर क्या होगा ? इस मुर्दे शरीर का ही तो उत्थान और पतन गिना जाता है । हम तो अपनी आत्मा मस्ती में मस्त है।

बिगड़े तब जब हो कोई बिगड़नेवाली शय ।

अकाल अछेघ अभेघ को कौन वस्तु का भय ॥

मुझ चैतन्य को, मुझ आत्मा को क्या बिगड़ना है और क्या मिलना है ? बिगड़ बिगड़कर किसका बिगड़ेगा ? इस मुर्दे शरीर का ही न ? मिल मिलकर भी क्या मिलेगा ? इस मुर्दे शरीर को ही मिलेगा न ? इसको तो मैं जलाकर आया हूँ ज्ञान की आग में । अब सिकुड़ने की क्या जरुरत है ? बाहर के दु:खों के सामने, प्रलोभनों के सामने झुकने की क्या जरुरत है ?

अब मैं सम्राट की नाईं जिऊँगा ... बेपरवाह होकर जिऊँगा । साधना के मार्ग पर कदम रखा है तो अब चलकर ही रहूँगा । ॐ ... ॐ ... ॐ ... ऐसे व्यक्ति के लिए सब संभव है ।

एक मरणियो सोने भारे ।

आखिर तो मरना ही है, तो अभी से मौत को निमंत्रण दे दो । साधक वह है कि जो हजार विघ्न आयें तो भी न रुके , लाख प्रलोभन आएँ तो भी न फँसे । हजार भय के प्रसंग आएँ तो भी भयभीत न हो और लाख धन्यवाद मिले तो भी अहंकारी न हो । उसका नाम साधक है । साधक का अनुभव होना चाहिए कि:

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं ।

हम से जमाना है जमाने से हम नहीं ॥

प्रहलाद के पिता ने रोका तो प्रहलाद ने पिता की बात को ठुकरा दी । वह भगवान के रास्ते चल पड़ा । मीरा को पति और परिवार ने रोका तो मीरा ने उनकी बात को ठुकरा दिया । राजा बलि को तथाकथित गुरु ने रोका तो राजा बलि ने उनकी बात को सुनी अनसुनी कर दी ।

ईश्वर के रास्ते पर चलने में यदि गुरु भी रोकता है तो गुरु की बात को भी ठुकरा देना, पर ईश्वर को नहीं छोड़ना ।

ऐसा कौन गुरु है जो भगवान के रास्ते चलने से रोकेगा ? वह निगुरा गुरु है । ईश्वर के रास्ते चलने में यदि कोई गुरु रोके तो तुम बलि राजा को याद करके कदम आगे रखना । यदि पत्नी रोके तो राजा भरतृहरी को याद करके पत्नी की ममता को ढकेल देना । यदि पुत्र और परिवार रोकता है तो उन्हें ममता की जाल समझकर काट देना ज्ञान की कैंची से । ईश्वर के रास्ते, आत्म साक्षात्कार के रास्ते चलने में दुनियाँ का अच्छे से अच्छा व्यक्ति भी आड़े आता हो तो ... आहा ! तुलसीदासजी ने कितना सुन्दर कहा है !

जाके प्रिय न राम वैदेही,

तजिए ताहि कोटि वैरी सम , यद्यपि परम सनेही ।

ऐसे प्रसंग में परम स्नेही को भी वैरी की तरह त्याग दो । अन्दर की चेतना का सहारा लो और ॐ की गर्जना करो ।

दु:ख और चिन्ता, हताशा और परेशानी, असफलता और दरिद्रता भीतर की चीजें होती हैं, बाहर की नहीं । जब भीतर तुम अपने को असफल मानते हो तब बाहर तुम्हें असफलता दिखती है ।

भीतर से तुम दीन हीन मत होना । घबराहट पैदा करनेवाली परिस्थितियों के आगे भीतर से झुकना मत । ॐकार का सहारा लेना । मौत भी आ जाए तो एक बार मौत के सिर पर भी पैर रखने की ताकत पैदा करना । कब तक डरते रहोगे ? कब तक मनौतियाँ मनाते रहोगे ? कब तक नेताओं को, साहबों को, सेठों को, नौकरों को रिझाते रहोगे ? तुम अपने आपको रिझा लो एक बार । अपने आपसे दोस्ती कर लो एक बार । बाहर के दोस्त कब तक बनाओगे ?

कबीरा इह जग आय के, बहुत से कीने मीत ।

जिन दिल बाँधा एक से, वे सोये निश्चिंत ॥

बहुत सारे मित्र किये लेकिन जिसने एक से दिल बाँधा वह धन्य हो गया । अपने आपसे दिल बाँधना है । यह 'एक' कोई आकाश पाताल में नहीं बैठा है । कहीं टेलिफोन के खम्भे नहीं डालने हैं, वायरिंग नहीं जोड़नी है । वह 'एक' तो तुम्हारा अपना आपा है । वह 'एक' तुम्हीं हो । नाहक सिकुड़ रहे हो । 'यह मिलेगा तो सुखी होऊँगा, वह मिलेगा तो सुखी होऊँगा ...'

अरे ! सब चला जाए तो भी ठीक है, सब आ जाए तो भी ठीक है । आखिर यह संसार सपना है । गुजरने दो सपने को । हो होकर क्या होगा ? क्या नौकरी नहीं मिलेगी ? खाना नहीं मिलेगा ? कोई बात नहीं । आखिर तो मरना है इस शरीर को । ईश्वर के मार्ग पर चलते हुए बहुत बहुत तो भूख प्यास से पीड़ित हो मर जायेंगे । वैसे भी खा खाकर लोग मरते ही हैं न ! वास्तव में होता तो यह है कि प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले भक्त की रक्षा ईश्वर स्वयं करते हैं । तुम जब निश्चिंत हो जाओगे तो तुम्हारे लिए ईश्वर चिन्तित होगा कि कहीं भूखा न रह जाए ब्रह्मवेत्ता ।

सोचा मैं न कहीं जाऊँगा यहीं बैठकर अब खाऊँगा ।

जिसको गरज होगी आयेगा सृष्टिकर्त्ता खुद लायेगा ॥

सृष्टिकर्त्ता खुद भी आ सकता है। सृष्टि चलाने की और सँभालने की उसकी जिम्मेदारी है । तुम यदि सत्य में जुट जाते हो तो धिक्कार है उन देवी देवताओं को जो तुम्हारी सेवा के लिए लोगों को प्रेरणा न दें । तुम यदि अपने आपमें आत्मारामी हो तो धिक्कार है उन किन्नरों और गंधर्वों को जो तुम्हारा यशोगान न करें !

नाहक तुम देवी देवताओं के आगे सिकुड़ते रहते हो कि 'आशीर्वाद दो... कृपा करो ...' तुम अपनी आत्मा का घात करके, अपनी शक्तियों का अनादर करके कब तक भीख माँगते रहोगे ? अब तुम्हें जागना होगा । इस द्वार पर आये हो तो सोये सोये काम न चलेगा ।

हजार तुम यज्ञ करो, लाख तुम मंत्र करो लेकिन तुमने मूर्खता नहीं छोड़ी तब तक तुम्हारा भला न होगा । 33 करोड़ देवता तो क्या, 33 करोड़ कृष्ण आ जायें, लेकिन जब तक तत्त्वज्ञान को व्यवहार में उतारा नहीं तब तक अर्जुन की तरह तुम्हें रोना पड़ेगा । **Let the lion of vedant roar in your life**. वेदान्तरुपी सिंह को अपने जीवन में गर्जने दो । टँकार कर दो ॐ कार का । फिर देखो, दुःख चिन्ताएँ कहाँ रहते हैं ।

चाचा मिटकर भतीजे क्यों होते हो ? आत्मा होकर शरीर क्यों बन जाते हो ? कब तक इस जलनेवाले को 'मैं' मानते रहोगे ? कब तक इसकी अनुकूलता में सुख, प्रतिकूलता में दुःख महसूस करते रहोगे ? अरे सुविधा के साधन तुम्हें पाकर धनभागी हो जायें, तुम्हारे कदम पड़ते ही असुविधा सुविधा में बदल जाए ऐसा तुम्हारा जीवन हो ।

घने जंगल में चले जाओ । वहाँ भी सुविधा उपलब्ध हो जाए । न भी हो तो अपनी मौज, अपना आत्मानंद भंग न हो । भिक्षा मिले तो खा लो । न भी मिले तो वाह वाह ! आज उपवास हो गया ।

राजी हैं उसमें जिसमें तेरी रजा है ।

हमारी न आरजू है न जूस्तजू है ॥

खाना या नहीं खाना यह मुर्दे के लिए है । जिसकी अस्थियाँ भी ठुकराई जाती हैं उसकी चिन्ता ? भगवान का प्यारा होकर टुकड़ों की चिन्ता ? संतो का प्यारा होकर कपड़ों की चिन्ता ? फकीरों का प्यारा होकर रुपयों की चिन्ता ? सिद्धों का प्यारा होकर नाते रिश्तों की चिन्ता ?

चिन्ता के बहुत बोझे उठाये । अब निश्चिन्त हो जाओ । फकीरों के संग आये हो तो अब फक्कड़ हो जाओ । साधना में जुट जाओ ।

फकीर का मतलब भिखारी नहीं । फकीर का मतलब लाचार नहीं । फकीर वह है जो भगवान की छाती पर खेलने का सामर्थ्य रखता हो । ईश्वर की छाती पर लात मारने की शक्ति जिसमें है वह फकीर । भृगु ने भगवान की छाती पर लात मार दी और भगवान पैरचंपी कर रहे हैं । भृगु फकीर थे । भिखमंगो को थोड़े ही फकीर कहते हैं ? तृष्णावान् को थोड़े ही फकीर कहते हैं ?

भृगु को भगवान के प्रति द्वेष न था । उनकी समता निहारने के लिए लगा दी लात । भगवान विष्णु ने क्या किया ? कोप किया ? नहीं । भृगु के पैर पकड़कर चंपी की कि हे मुनि ! तुम्हें चोट तो नहीं लगी ?

फकीर ऐसे होते हैं । उनके संग में आकर भी लोग रोते हैं : ‘कंकड़ दो... पत्थर दो... मेरा क्या होगा ...? बच्चो का क्या होगा ? कुटुम्ब का क्या होगा ?

सब ठीक हो जायेगा । पहले तुम अपनी महिमा में आ जाओ । अपने आपमें आ जाओ ।

न्यायाधीश कोर्ट में झाड़ू लगाने थोड़े ही जाता है ? वादी प्रतिवादी को, असील वकील को बुलाने थोड़ी ही जाता है ? वह तो कोर्ट में आकर विराजमान होता है अपनी कुर्सी पर । बाकी के सब

काम अपने आप होने लगते हैं । न्यायाधीश अपनी कुर्सी छोड़कर पानी भरने लग जाए, झाड़ू लगाने लग जाए, वादी प्रतिवादी को पुकारने लग जाए तो वह क्या न्याय करेगा ?

तुम न्यायाधीशों के भी न्यायाधीश हो । अपनी कुर्सी पर बैठ जाओ । अपनी आत्मचेतना में जग जाओ ।

छोटी बड़ी पूजाएँ बहुत की । अब आत्मपूजा में आ जाओ ।

देखा अपने आपको, मेरा दिल दीवाना हो गया ।

ना छेड़ो मुझे यारों ! मैं खुद पे मस्ताना हो गया ॥

ऐसे गीत निकलेंगे तुम्हारे भीतर से । तुम अपनी महिमा में आओ । तुम कितने बड़े हो ! इन्द्रपद तुम्हारे आगे तुच्छ है, अति तुच्छ है । इतने तुम बड़े हो, फिर सिकुड़ रहे हो ! धक्का मुक्का कर रहे हो । 'दया कर दो ... जरा सा प्रमोशन दे दो... अवल कारकुन में से तहसीलदार बना दो ... तहसीलदार में से कलेक्टर बना दो ... कलेक्टर में से सचिव बना दो ...'

लेकिन ... **जो तुमको यह सब बनायेंगे वे तुमसे बड़े बन जायेंगे । तुम छोटे ही रह जाओगे** । बनती हुई चीज से बनानेवाला बड़ा होता है । अपने से किसको बड़ा रखोगे ? मुर्दों को क्या बड़ा रखना ? अपनी आत्मा को ही सबसे बड़ी जान लो, भैया ! यहाँ तक कि तुम अपने से इन्द्र को भी बड़ा न मानो।

फकीर तो और आगे की बात कहेंगे । वे कहते हैं 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अपने से बढ़कर नहीं होते, एक ऐसी अवस्था आती है । यह है आत्म साक्षात्कार ।'

ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तत्त्ववेत्ता से आलिंगन करके मिलते हैं कि यह जीव अब शिवस्वरुप हुआ । ऐसे ज्ञान में जगने के लिए तुम्हारा मनुष्य जन्म हुआ है । ... और तुम सिकुड़ते रहते हो ? 'मुझे नौकर बनाओ, चाकर रखो ।' अरे, तुम्हारी यदि तैयारी है तो अपनी महिमा में जगना कोई कठिन बात नहीं है ।

यह कौन सा उकदा है जो हो नहीं सकता ।

तेरा जी न चाहे तो हो नहीं सकता ॥

छोटा सा कीड़ा पत्थर में घर करे ।

और इन्सान क्या दिले दिलबर में घर न करे ॥

तुम्हारे सब पुण्य, कर्म, धर्माचरण और देव दर्शन का यह फल है कि तुम्हें आत्मज्ञान में रुचि हुई । ब्रह्मवेत्ताओं के शरीर की मुलाकात तो कई नास्तिकों को भी हो जाती है, अभागों को भी हो जाती है । श्रद्धा जब होती है तब शरीर के पार जो बैठा है उसे पहचानने के काबिल तुम बन जाओगे । ॐ ... ॐ ... ॐ ...

जो तत्त्ववेत्ताओं की वाणी से दूर है उसे इस संसार में भटकना ही पड़ेगा । जन्म मरण लेना ही पड़ेगा । चाहे वह कृष्ण के साथ हो जाए चाहे अम्बाजी के साथ हो जाए लेकिन जब तक तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तब तक तो बाबा ...

गुजराती भक्त कवि नरसिंह मेहता कहते हैं :

आत्मतत्त्व चीन्या विना सर्व साधना झूठी ।

सर्व साधनाओं के बाद नरसिंह मेहता यह कहते हैं ।

तुम कितनी साधना करोगे ?

पहले मैंने भी खूब पूजा उपासना की थी । भगवान शिव की पूजा के बिना कुछ खाता पीता नहीं था । प. पू. सदगुरुदेव श्री लीलाशाहजी बापू के पास गया तब भी भगवान शंकर का बाण और पूजा की सामग्री साथ में लेकर गया था । मैं लकड़ियाँ भी धोकर जलाऊँ, ऐसी पवित्रता को माननेवाला था । फिर भी जब तक परम पवित्र आत्मज्ञान नहीं हुआ तब तक यह सब पवित्रता बस उपाधि थी । अब तो ... अब क्या कहूँ ?

नैनीताल में 15 डोटियाल (कुली) रहने के लिए एक मकान किराये पर ले रहे थे । किराया 32 रुपये था और वे लोग 15 थे । लीलाशाहजी बापू ने दो रुपये देते हुए कहाः

"मुझे भी एक 'मेम्बर' बना लो । 32 रुपये किराया है, हम 16 किरायेदार हो जायेंगे ।''

ये अनन्त ब्रह्माण्डों के शहेनशाह उन डोटियालों के साथ वर्षों तक रहे । वे तो महा पवित्र हो गये थे । उन्हें कोई अपवित्रता छू नहीं सकती थी ।

एक बार जो परम पवित्रता को उपलब्ध हो गया उसे क्या होगा ? लोहे का टुकड़ा मिट्टी में पड़ा है तो उसे जंग लगेगा । उसे सँभालकर आलमारी में रखोगे तो भी हवाँए वहाँ जंग चढ़ा देंगी । उसी लोहे के टुकड़े को पारस का स्पर्श करा दो, एक बार सोना बना दो, फिर चाहे आलमारी में रखो चाहे कीचड़ में डाल दो, उसे जंग नहीं लगेगा ।

ऐसे ही हमारे मन को एक बार आत्मस्वरुप का साक्षात्कार हो जाय । फिर उसे चाहे समाधि में बिठाओ, पवित्रता में बिठाओ चाहे नरक में ले जाओ । वह जहाँ होगा, अपने आपमें पूर्ण होगा । उसीको ज्ञानी कहते हैं । ऐसा ज्ञान जब तक नहीं मिलेगा तब तक रिद्धि सिद्धि आ जाए, मुर्दे को फूँक मारकर उठाने की शक्ति आ जाए फिर भी उस आत्मज्ञान के बिना सब व्यर्थ है । वाक् सिद्धि या संकल्पसिद्धि ये कोई मंजिल नहीं है । साधनामार्ग में ये बीच के पड़ाव हो सकते हैं । यह ज्ञान का फल नहीं है । ज्ञान का फल तो यह है कि ब्रह्मा और महेश का ऐश्वर्य भी तुम्हें

अपने निजस्वरुप में भासित हो, छोटा सा लगे । ऐसा तुम्हारा आत्म परमात्मस्वरुप है। उसमें तुम जागो । ॐ ... ॐ ... ॐ ...

मोहनिशा से जागो

आँखों के द्वारा, कानों के द्वारा दुनियाँ भीतर घुसती है और चित्त को चंचल करती है । जप, ध्यान, स्मरण, शुभ कर्म करने से बुद्धि स्वच्छ होती है । स्वच्छ बुद्धि परमात्मा में शांत होती है और मलिन बुद्धि जगत में उलझती है । बुद्धि जितनी जितनी पवित्र होती है उतनी उतनी परम शांति से भर जाती है । बुद्धि जितनी जितनी मलिन होती है, उतनी संसार की वासनाओं में, विचारों में भटकती है ।

आज तक जो भी सुना है, देखा है, उसमें बुद्धि गई लेकिन मिला क्या? आज के बाद जो देखेंगे, सुनेंगे उसमें बुद्धि को दौड़ायेंगे लेकिन अन्त में मिलेगा क्या? श्रीकृष्ण कहते हैं :

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

'जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरुप दलदल को भलीभाँति पार कर जाएगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा ।' (भगवदगीता:2.52)

दलदल में पहले आदमी का पैर धँस जाता है । फिर घुटने, फिर जाँघें, फिर नाभि, फिर छाती, फिर पूरा शरीर धँस जाता है । ऐसे ही संसार के दलदल में आदमी धँसता है । 'थोड़ा सा यह कर लूँ, थोड़ा सा यह देख लूँ, थोड़ा सा यह खा लूँ, थोड़ा सा यह सुन लूँ ।' प्रारम्भ में बीड़ी पीनेवाला जरा सी फूँक मारता है, फिर व्यसन में पूरा बँधता है । शराब पीनेवाला पहले जरा सा घूँट पीता है, फिर पूरा शराबी हो जाता है ।

ऐसे ही ममता के बन्धनवाले ममता में फँस जाते हैं । 'जरा शरीर का ख्याल करें, जरा कुटुम्बियों का ख्याल करें ... ।' 'जरा ... जरा ...' करते करते बुद्धि संसार के ख्यालों से भर जाती है । जिस बुद्धि में परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए, जिस बुद्धि में परमात्मशांति भरनी चाहिए उस बुद्धि में संसार का कचरा भरा हुआ है । सोते हैं तो भी संसार याद आता है, चलते हैं तो भी संसार याद आता है, जीते हैं तो संसार याद आता है और मरते... हैं ... तो ... भी ... संसार... ही... याद... आता... है ।

सुना हुआ है स्वर्ग के बारे में, सुना हुआ है नरक के बारे में, सुना हुआ है भगवान के बारे में । यदि बुद्धि में से मोह हट जाए तो स्वर्ग नरक का मोह नहीं होगा, सुने हुए भोग्य पदार्थों का मोह नहीं होगा । मोह की निवृत्ति होने पर बुद्धि परमात्मा के सिवाय किसी में भी नहीं ठहरेगी । परमात्मा के सिवाय कहीं भी बुद्धि ठहरती है तो समझ लेना कि अभी अज्ञान जारी है । अमदावादवाला कहता है कि मुंबई में सुख है । मुंबईवाला कहता है कि कलकत्ते में सुख है । कलकत्तेवाला कहता है कि कश्मीर में सुख है । कश्मीरवाला कहता है कि मंगणी में सुख है । मंगणीवाला कहता हैं कि शादी में सुख है । शादीवाला कहता है कि बाल बच्चों में सुख है । बाल बच्चोंवाला कहता है कि निवृत्ति में सुख है । निवृत्तिवाला कहता है कि प्रवृत्ति में सुख है । मोह से भरी हुई बुद्धि अनेक रंग बदलती है । अनेक रंग बदलने के साथ अनेक अनेक जन्मों में भी ले जाती है ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ...

'जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरुपी दलदल को भलीभाँति पार कर जाएगी, उसी समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक संबंधी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा ।'

इस लोक और परलोक...

सात लोक ऊपर हैं : भूः, भुवः, स्वः, जनः, तपः, महः और सत्य ।

सात लोक नीचे हैं : तल, अतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ।

इस प्रकार सात लोक ऊपर , सात लोक नीचे है...जब बुद्धि में मोह होता है तो किसी न किसी लोक में आदमी यात्रा करते है ।

वशिष्ठजी महाराज के पास एक ऐसी विद्याधरी आयी जिसका मनोबल धारणाशक्ति से अत्यन्त पुष्ट हुआ था, इच्छाशक्ति प्रबल थी । उसने वशिष्ठजी से कहा :

''हे मुनीश्वर ! मैं तुम्हारी शरण आई हूँ । मैं एक निराली सृष्टि में रहनेवाली हूँ । उस सृष्टि का रचयिता मेरे पति है । उनकी बुद्धि में स्त्री भोगने की इच्छा हुई इसलिए उन्होंने मेरा सृजन किया । मेरी उत्पत्ति के बाद उनको ध्यान में, आत्मा में अधिक आनंद आने लगा, इसलिए वे मुझसे विरक्त हो गये । अब मेरी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं । अब मेरी यौवन अवस्था है । मेरे अंग सुंदर और सुकोमल हैं । मैं भर्ता के बिना नहीं रह सकती । आप कृपा करके चलिये । मेरे पति को समझाइए ।''

साधु पुरुष परोपकार के लिए सम्मत हो जाते हैं । वशिष्ठजी महाराज उस भद्र महिला के साथ उसके पति के यहाँ जाने को तैयार हुए । वशिष्ठजी भी योगी थे, वह महिला भी धारणाशक्ति में विकसित थी । दोनों उड़तें उड़तें इस सृष्टि को लाँघते गये । एक नये ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हो गये । वहाँ वह विद्याधरी एक बड़ी शिला में प्रविष्ट हो गयी । वशिष्ठजी बाहर रुक गये । वह स्त्री वापस बाहर आई तो वशिष्ठजी बोले: ''तेरी सृष्टि में हम प्रविष्ट नहीं हो सकते ।''

तब उस विद्याधरी ने कहा : ''आप मेरी चित्तवृत्ति के साथ अपनी चित्तवृत्ति मिलाइए । आप भी मेरे साथ साथ प्रविष्ट हो सकेंगे ।''

एक आदमी स्वप्न देख रहा है । उसके स्वप्न में दूसरा आदमी प्रविष्ट नहीं हो सकता । दूसरा तब प्रविष्ट हो सकेगा कि जब उन दोनों के सुने हुये संस्कार एक जैसे हों । एक आदमी सोया है । आप उसके पास खड़े हैं । आप बार बार सघनता से ख्याल करो, उसी ख्याल का बार बार पुनरावर्तन करो कि बारिश हो रही है, ठंड लग रही है । आपके श्वासोच्छ्वास के आंदोलन उस

सोये हुए आदमी पर प्रभाव डालेंगे, उसकी चित्तवृत्ति आपकी चित्तवृत्ति के साथ तादात्म्य करेगी और उसको स्वप्न आयेगा कि खूब बारिश हो रही है और मैं भीग गया ।

मूर्ख आदमियों के साथ हम लोग जीते हैं । संसार के दलदल में फँसे हुए, पैसों के गुलाम, इन्द्रियों के गुलाम ऐसे लोगों के बीच यदि साधक भी जाता है तो वह भी सोचता है कि चलो, थोड़े रुपये इकट्ठे कर लूँ । नोटों की थोड़ी सी थप्पी तो बना लूँ क्योंकि मेरे बाप के बाप तो ले गये हैं, मेरे बाप भी ले गये हैं और अब मेरेको भी ले जाना है ।

मोह के दलदल में आदमी फँस जाता है । कीचड़ में धँसे हुए व्यक्ति के साथ यदि तुम तादात्म्य करते हो तो तुम भी डूबने लगते हो । तुमको लगता है कि ये डूबे हैं, हम नहीं डूबते । मगर तुम ऐसा कहते भी जाते हो और डूबते भी जाते हो । बुद्धि में एक ऐसा विचित्र भ्रम घुस जाता है ।

जैसे तैसे साधक को ही नहीं, अर्जुन जैसे को भी यह भ्रम हो गया था । अर्जुन को आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ और वह बोलता है किः ''भगवन् ! तुम्हारे प्रसाद से अब मैं सब समझ गया हूँ । अब मैं ठीक हो गया हूँ ।''

भगवान कहते हैं : ''अच्छा, ठीक है । समझ रहा है फिर भी दुःखी सुखी होता है, भीतर मोह ममता है ।''

ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन ने कहा कि मुझे ज्ञान हो गया है, मैं सब समझ गया । मेरा मोह नष्ट हो गया । फिर सात अध्याय और चले हैं । उसको पता ही नहीं कि आत्म साक्षात्कार क्या होता है ।

एक तुष्टि नाम की भूमिका आती है जो जीव का स्वभाव होता है । जीव में थोड़ी सी शांति, थोड़ा सा सामर्थ्य, थोड़ा सा हर्ष आ जाता है तो समझ लेता है मैंने बहुत कुछ पा लिया । जरा सा आभास होता है, झलक आती है तो उसीको लोग आत्म साक्षात्कार मान लेते हैं ।

जब मोहकलिल को बुद्धि पार कर जायेगी तब सुना हुआ और देखा हुआ जो कुछ होगा उससे तुम्हारा वैराग्य हो जायेगा । इन्द्र आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो जाए, कुबेर तुम्हारे लिए खजाने की कुंजियाँ लेकर खड़ा रहे, ब्रह्माजी कमण्डल लेकर खड़े रहें और बोलें कि: 'चलिए, ब्रह्मपुरी का सुख लीजिये ...' फिर भी तुम्हारे चित्त में उन पदार्थों का आकर्षण नहीं होगा । तब समझना कि आत्म साक्षात्कार हो गया ।

बच्चों का खेल नहीं मैदाने मुहब्बत ।

यहाँ जो भी आया सिर पर कफन बाँधकर आया ॥

जीव का स्वभाव है भोग । शिव का स्वभाव भोग नहीं है । जीव का स्वभाव है वासना, जीव का स्वभाव है सुख के लिए दौड़ना । ब्रह्माजी आयेंगे तो सुख देने की ही बात करेंगे न ? सुख के लिए यदि तुम भागते हो तो पता चलता है कि सुख का दरिया तुम्हारे भीतर पूरा उमड़ा नहीं है । सुख की कमी होगी तब सुख लेने को कहीं और जाओगे । सुख लेना जीव का स्वभाव होता है । आत्म साक्षात्कार के बाद जीव बाधित हो जाता है । जीव का जीवपना नहीं रहता । वह शिवत्व में प्रगट हो जाता है।

कामदेव रति को साथ लेकर शिवजी के आगे कितने ही नखरे करने लगा लेकिन शिवजी को प्रभावित न कर सका । शिवजी इतने आत्मारामी हैं, उनमें इतना आत्मानंद है कि उनके आगे काम का सुख अति नीचा है, अति तुच्छ है । शिवजी काम से प्रभावित नहीं हुए ।

योगी लोग, संत लोग जब साधना करते हैं तब अप्सराएँ आती हैं, नखरे करती हैं । जो उनके नखरे से आकर्षित हो जाते हैं वे आत्मनिष्ठा नहीं पा सकते हैं, आत्मानंद के खजाने को नहीं पा

सकते हैं । इसीलिए साधकों को चेतावनी दी जाती है कि किसी रिद्धि सिद्धि में, किसी प्रलोभन में मत फँसना ।

तुम मन और इन्द्रियों का थोड़ा सा संयम करोगे तो तुम्हारी वाणी में सामर्थ्य आ जाएगा । तुम्हारे संकल्प में बल आ जाएगा, तुम्हारे द्वारा चमत्कार होने लगेंगे ।

चमत्कार होना आत्म साक्षात्कार नहीं है । चमत्कार होना शरीर और इन्द्रियों के संयम का फल है । आत्म साक्षात्कारी महापुरुष के द्वारा भी चमत्कार हो जाते हैं । वे चमत्कार करते नहीं हैं, हो जाते हैं । उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है । वाणी और संकल्प में सामर्थ्य यह इच्छाशक्ति का ही एक हिस्सा है । तुम जो संकल्प करो उसमें डटे रहो । तुम जो विचार करते हो उन विचारों को काटने का दूसरा विचार न उठने दो, तो तुम्हारे विचारों में बल आ जाएगा ।

शरीर को, इन्द्रियों को संयत करके जप, तप, मौन, एकाग्रता करो तो अंतःकरण शुद्ध होगा । शुद्ध अंतःकरण का संकल्प जल्दी फलता है । लेकिन यह आखिरी मंजिल नहीं है । शुद्ध अंतःकरण फिर अशुद्ध भी हो सकता है ।

15-16 साल पहले वाराही में मेरे पास एक साधु आया और बहुत रोया । मैंने पूछा :''क्या बात है ?''

वह बोला : '' मेरा सब कुछ चला गया । बाबाजी ! लोग मुझे भगवान जैसा मानते थे । अब मेरे सामने आँख उठाकर कोई नहीं देखता है ।'' वह और रोने लगा । मैंने सांत्वना देकर ज्यादा पूछा तो उसने बताया:

''बाबाजी ! क्या बताऊँ ? मैं पानी में निहारकर वह पानी दे देता तो रोता हुआ आदमी हँसने लगता था । बीमार आदमी ठीक हो जाता था । लेकिन बाबाजी ! अब मेरी वह शक्ति न जाने कहाँ चली गई ? अब मुझे कोई पूछता नहीं ।''

बुद्धि का मोह पूरा गया नहीं था । बुद्धि का तमस् थोड़ा गया, बुद्धि का रजस् थोड़ा गया लेकिन बुद्धि पूरी परमात्मा में ठहरी नहीं थी । पूरी परमात्मा में नहीं ठहरी तो प्रतिष्ठा में ठहरी । प्रतिष्ठा थी तो बुद्धि प्रसन्न हुई और 'मैं भगवान हूँ...' ऐसा मानकर खुश रहने लगी । जब बुद्धि की शुद्धि चली गई, एकाग्रता नष्ट हुई तो संकल्प का सामर्थ्य चला गया । लोगों ने देखना बंद कर दिया तो बोलता है : 'बाबाजी ! मैं परेशान हूँ ।'

ज्ञानी शूली पर चढ़े तो भी परेशान नहीं होते । प्रसिद्धि के बदले कुप्रसिद्धि हो जाए, जहर दिया जाए, शूली पर चढ़ा दिया जाए फिर भी ज्ञानी अन्दर से दुःखी नहीं होते, क्योंकि उन्होंने जान लिया कि संसार में जो भी सुना हुआ, देखा हुआ, जो कुछ भी है, नहीं के बराबर है, सब स्वप्न है । भगवान शंकर कहते हैं :

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।

सत्य हरिभजन जगत सब सपना ॥

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । उसकी प्रज्ञा ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाती है।

उस साधु के लिए थोड़ी देर मैं शांत हो गया और फिर उससे बोला : "तुमने त्राटक सिद्ध किया हुआ था ।"

वह बोला : "हाँ बाबाजी ! आपको कैसे पता चला गया ?"

मैंने कहा : "ऐसे ही पता चल गया ।"

आपका हृदय स्थिर है तो दूसरों की चित्तवृत्ति के साथ आपका तादात्म्य हो जाता है । कोई कठिन बात नहीं है । अपने लिए वह चमत्कार लगता है, संतो के लिए यह कोई चमत्कार नहीं है ।

तुम्हारा रेडियो यदि ठीक है तो वायुमण्डल में बहता हुआ गाना तुम्हें सुनाई पड़ता है । ऐसे ही यदि तुम्हारा अंतःकरण शांत होता है, बुद्धि स्थिर होती है तो घटित घटना या भविष्य की घटना का पता चल जाता है । यही कारण है कि वाल्मीकि ऋषि ने सौ साल पहले रामायण रच लिया, रामजी से या विष्णुजी से पूछने नहीं गये कि तुम क्या करोगे ? अथवा, किसी ज्योतिष का हिसाब लगाने नहीं गये थे । बुद्धि इतनी शुद्ध होती है कि भूत और भविष्य की कल्पनाएँ नहीं रहती हैं । ज्ञानी के लिए सदा वर्त्तमान रहता है । इसलिए भूत भविष्य की खबर पड़ जाती है । उनकी बुद्धि विचलित नहीं होती है ।

उस साधु ने त्राटक सिद्ध किया हुआ था । त्राटक से एकाग्रता होती है और एकाग्रता से इच्छाशक्ति विकसित होती है, सामर्थ्य बढ़ जाता है । उसी इच्छाशक्ति को यदि आत्मज्ञान में नहीं मोड़ा तो वह इच्छाशक्ति फिर संसार की तरफ ले जाती है ।

एकाग्रता के लिए त्राटक की विधि इस प्रकार है:

एक फुट के चौरस गत्ते पर एक सफेद कागज लगा दो । उसके केन्द्र में एक रुपये के सिक्के के बराबर एक गोलाकार चिह्न बनाओ । इस गोलाकार चिह्न के केन्द्र में एक तिलभर बिन्दु छोड़कर बाकी के भाग में काला रंग भर दो । बीचवाले बिन्दु में पीला रंग भर दो ।

अब उस गत्ते को ऐसे रखो कि वह गोलाकार चिह्न आपकी आँखो की सीधी रेखा में रहे । हररोज एक ही स्थान में कोई एक निश्चित समय में उस गत्ते के सामने बैठ जाओ । पलकें गिराये बिना अपनी दृष्टि उस गोलाकार चिह्न के पीले केन्द्र पर टिकाओ । आँखे पूरी खुली या पूरी बंद न हों।

आँखे बन्द होती हैं तो तुम्हारी शक्ति मनोराज में क्षीण होती है। आँखे यदि पूरी खुली होती हैं तो उसके द्वारा तुम्हारी शक्ति की रश्मियाँ बाहर बहकर क्षीण होती है, आत्मिक शक्ति क्षीण होती है । इसी कारण ट्रेन, बस या मोटरकार की मुसाफिरी में खिड़की से बाहर झाँकते हो तो थोड़ी ही देर में थककर झपकियाँ लेने लगते हो । जीवनशक्ति खर्च हो जाती है ।

उस पीले बिन्दु पर दृष्टि एकाग्र करने से आँखो द्वारा बिखरती हुई जीवनशक्ति बचेगी और संकल्प की परंपरा टूटने लगेगी । संकल्प विकल्प कम होने से आध्यात्मिक बल जगेगा । पहले 5 मिनट, 10 मिनट, 15 मिनट बैठो । प्रारंभ में आँखे जलती हुई मालूम पड़ेंगी । आँखों में से पानी गिरेगा । रोज आधा घण्टा बैठने का अभ्यास करो । फिर तो तुम ऐसे ऐसे चमत्कार कर लोगे कि भगवान की तरह पूजे जाओगे । **उसके साथ यदि आत्मज्ञान नहीं होगा तो वह भगवान अंत में रोता हुआ भगवान होगा, मुक्त भगवान नहीं होगा ।**

एकाग्रता सब तपस्याओं का माई बाप है ।

भक्ति परंपरा में पूज्यपाद माधवाचार्य प्रसिद्ध संत हो गये । उन्होने कहा था :"हे प्रभु ! हम तेरे प्यार में अब इतने गर्क हो गये हैं कि हमसे अब न यज्ञ होता है न तीर्थ होता है, न संध्या होती है, न तर्पण होता है, न मृगछाला बिछती है न माला घूमती है । हम तेरे प्यार में ही बिक गये ।"

जब प्रेमाभक्ति प्रगट होने लगती है तब कुटुम्बियों का, संसारियों का, समाज का मोह तो हट जाता है लेकिन फिर कर्मकाण्ड का मोह भी टूट जाता है । कर्मकाण्ड का मोह तब तक है जब तक देह में आत्मबुद्धि होती है । संसार में आसक्ति होती है तब तक कर्मकाण्ड में प्रीति होती है । संसार की आसक्ति हट जाए, कृष्ण में प्रेम हो जाए, राम में प्रेम हो जाए तो फिर कर्मकाण्ड की नीची साधना करने को जी नहीं चाहता है। कृष्ण का अर्थ है आकर्षनेवाला, आनंदस्वरुप आत्मा । राम का अर्थ है सबमें रमनेवाला, चैतन्य आत्मा ।

कुछ संप्रदायवाले त्राटक सिद्ध करके अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं । चमगादड़ मारकर, उसका काजल बनाकर उस काजल को आँखों में लगाकर किसीसे अपनी आँख के सामने निहारने और ध्यान करने को कहते हैं । ध्यान करनेवाले व्यक्ति की बुद्धि वश हो जाए, ऐसा संकल्प करके त्राटक करते हैं तो अच्छे अच्छे लोग उनके वश में हो जाते हैं ।

इसमें उनकी अपनी भी हानि है और सामनेवाले व्यक्ति की भी हानि है । एकाग्रता तो ठीक है लेकिन अगर एकाग्रता का उपयोग संसार है, एकाग्रता का उपयोग भोग है तो वह एकाग्रता साधक को मार डालती हैं । एकाग्रता का उपयोग एक परमात्मा की प्राप्ति के लिए होना चाहिए ।

रुपयों में पाप नहीं लेकिन रुपयों से भोग भोगना पाप है । सत्ता में पाप नहीं लेकिन सत्ता से अहंकार बढ़ाना पाप है । अक्लमंद होने में पाप नहीं लेकिन उस अक्ल से दूसरों को गिराना और अपने अहं को पोषित करना पाप है।

कई लोग परेशान रहते हैं । मूढ लोग, अधार्मिक लोग परेशान रहते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं लेकिन भगत लोग भी परेशान रहते हैं । भगत सोचता है कि 'मेरा मन स्थिर हो जाए... मेरी इन्द्रियाँ शांत हो जाएँ...' भैया मेरे ! मन शांत हो जाएगा, इन्द्रियाँ शांत हो जाएँगी तो 'रामनाम सत् है...' हो जाएगा । तन, मन, इन्द्रियों का तो स्वभाव है हरकत करना, चेष्टा करना । लेकिन वह चेष्टा सुयोग्य हो । मन का स्वभाव है संकल्प करना, लेकिन ऐसा संकल्प करें कि अपना बन्धन कटे । बुद्धि का स्वभाव है निर्णय करना ।

लोग इच्छा करते हैं: "मैं शांत हो जाऊँ पत्थर की तरह ... मेरा ध्यान लग जाए ..." जिनका ध्यान लगता है वे परेशान हैं और जिनका ध्यान नहीं लगता है वे भी परेशान हैं । ध्यान के रास्ते नहीं आए वे भी परेशान हैं ही । उनकी वृत्तियाँ पल पल में उद्विग्न होती हैं । रजो तमोगुण बढ़ जाता है ।

योग में बताया गया है कि चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं : क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ, एकाग्र और निरुद्ध । चित्त प्रकृति का बना है । वह सदा एक अवस्था में नहीं रहता । सदा एकाग्र भी नहीं रह सकता और सदा चंचल भी नहीं रह सकता । कितना भी चंचल आदमी हो लेकिन रात को वह शांत हो जाएगा । कितना भी शांत व्यक्ति हो लेकिन उसका चित्त चेष्टा करेगा ही ।

भगवान शंकर जैसी समाधि तो किसीकी लगी नहीं । फिर भी शंकरजी समाधि से उठते हैं तो डमरु लेकर नाचते हैं । शरीर, मन और संसार सदा बदलता रहता है । सुख दुःख सदा आता जाता है । दुःख में तो पकड़ नहीं होती लेकिन सुख में पकड़ रहती है कि यह सदा बना रहे । सुख में, धन में, स्वर्ग में यदि पकड़ है तो समझो कि बुद्धि का मोह अभी नहीं गया । ज्ञानी को किसीमें पकड़ नहीं होती । भगवान कृष्ण जी कहते हैं :

यदा ते मोहकलिलम्

मोह दलदल है । दलदल में आदमी थोड़ा धँसते धँसते पूरा नष्ट हो जाता है ।

लालजी महाराज एक सरल संत हैं। उनके पास एक साधु आये । जवान थे, देखने में ठीक ठाक थे ।

एक बार एक नववधू शादी के बाद तुरंत बाबाजी के दर्शन करने आयी । बाबाजी ने कहा: " भगवान के दर्शन कर लो ।" वह दर्शन करने गई तो उस साधु की आँख उस नववधू की ओर घूमती रही । उसके जाने के बाद लालजी महाराज ने साधु से कहा: ' महाराज ! आप संन्यासी ठहरे । गृहस्थ साधक भी अपने को बचाता है और आप ...? यह ठीक नहीं लगता है कि कोई युवती आयी और ... इन्द्रियों को जरा बचाना चाहिए ।"

कान से और आँख से संसार अपने अन्दर घुस जाता है । वह साधु चिढ़ गया । उसे अहंकार था कि मैं साधु हूँ । मैंने गेरुए कपड़े पहने हैं ।

घर छोड़ना बड़ी बात नहीं लेकिन अहंकार छोड़ना बड़ी बात है । किन्हीं पादरियों के संग से प्रभावित और उनकी बुद्धि से रंगे हुए उस युवान साधु ने रुठकर कहा: "भगवान ने आँखें दी हैं देखने के लिए, सौन्दर्य दिया है तो देखने के लिए । केवल देखने में क्या जाता है ? मैंने उससे बातें नहीं की, स्पर्श नहीं किया ।" आदमी तर्क देना चाहे तो कैसे भी दे सकता है ।

अरे भाई ! पहले पहले तो ऐसा ही होता है कि देखने में क्या जाता है ? शराब की एक प्याली पी लेने में क्या जाता हैं ? लेकिन यह मोहकलिल ऐसा विचित्र दलदल है कि उसमें एक बार पैर पड़ गया तो फिर ज्यों ज्यों समय बीतता जाएगा त्यों त्यों ज्यादा धँसते जाओगे ।

वह साधु उस समय तो रुठकर चला गया लेकिन वक्त बादशाह है । घूमते घामते छः आठ महीने के बाद वह साधु दुबला पतला, चेहरे पर गड्ढे, दीन हीन हालत में लालजी महाराज के पास आया । उन्होंने तो पहचाना भी नहीं । पहले स्वामी होकर आता था । अब वह भिखारी की तरह पूछ रहा है :

"मैं आ सकता हूँ ?"

लालजी महाराज : "आओ ।"

"मेरे साथ तीन मूर्तियाँ और भी हैं ।"

"उनको भी बुलाओ ।"

एक संन्यासिनी जैसी स्त्री और दो बच्चे भी आये । साधु ने अपनी पहचान दी तो लालजी महाराज बोले :

"फिर ये कौन हैं ?"

साधु बोला: "यह विधवा माई थी । बेचारी दु:खी थी । बच्चे भी थे । उसे देखकर मुझे दया आ गई । आजीविका का कोई साधन उसके पास नहीं था इसलिए माई को शिष्या बना लिया । बच्चों को पढ़ाता हूँ ।"

बाद में मालूम करने पर पता चला कि साधु ने उस स्त्री को पत्नी बनाया है और कमाता नहीं है इसलिए गेरुए कपड़े पहनाकर घुमाता रहता है ।

क्या तेजस्वी साधु था ! स्त्री की ओर जरा सा देखा केवल, और कुछ नहीं । आँख से इधर उधर कुछ देखते हो या कान से सुनते हो तो बुद्धि में जरा सा भी यदि मोह है तो वह बढ़ता जायेगा । आत्मज्ञान नहीं हुआ हो तो जब तक शरीर रहे, तब तक भगवान से प्रार्थना करना कि: 'हे प्रभु ! बचाते रहना इस दलदल से'

कईयों को भ्रांति हो जाती है कि : "मुझे आत्म साक्षात्कार हो गया ... मुझे आत्मशांति मिल गई ..."

भावनगर से करीब 15 20 कि. मी. दूर गौतमेश्वर नामक जगह है । वहाँ एक साधु थे । बहुत त्यागी थे । लोगों की भीड़ को देखते तो वे एकान्त में भाग जाते । संसार से विरक्त । कुछ साथ में नहीं रखते थे । एकाध कपड़ा पहनते थे । त्यागी थे । नारायण उनका नाम था और नारायण के भक्त थे । बाद में वे दु:खी होकर मरे ।

मैंने कहा : 'त्यागी हैं, भगवान के भक्त हैं तो दु:खी होकर नहीं मरते । लोग उन्हें दु:ख दे सकें, मगर वे दु:खी होते नहीं ।'

तब लोगों ने बताया : "घूमते घूमते वे गिरनार चले गये थे । वहाँ देखा किसी अघोरी को । सोचा, जरा सा सुल्फा पीने में क्या जाता है ? एक फूँक लेने में क्या जाता है ? जरा सा चरस खींचने में क्या जाता है ? उन्होंने सुल्फा भी पिया, भाँग भी पी, चरस भी पिया, सिगरेट भी पीने लगे । फिर अशांत होकर आये, विक्षिप्त होकर आये और आत्मघात करके मर गये ।"

शामलाजी आदिवासी क्षेत्र में मुझे समाज के लोगों ने आकर कहा कि यहाँ के पादरी लोग बोतल खुली रखकर उसमें से प्यालियाँ पीते पीते लोगों को लेक्चर देते हैं, आशीर्वचन देते हैं । ऐसे शराबी लोग धर्मगुरु होकर लोगों के सिर पर हाथ रखते हैं । वे गरीब आदिवासी बेचारे धर्मपरिवर्तन के बहाने धर्मभ्रष्ट होते हैं । जिस कुल में जन्म लिया हो उस कुल के मुताबिक अगर सत्कर्म करें तो उस पुण्य के प्रभाव से उनके पूर्वजों को भी सदगति मिल जाये । यहाँ तो शराबी लोग थोड़े से रुपयों की लालच देकर भोले भाले बेचारे आदिवासियों को धर्मभ्रष्ट कर रहे हैं ।

पीत्वा मोहमयीं मदिरां संसार भूतो उन्मत : ।

दुर्जन तो दु:खी होते ही हैं लेकिन सज्जन भी सच्ची समझ के बिना परेशान हो जाते हैं । एक पिता फरियाद करता है कि : "मैं सुबह जल्दी उठता हूँ । पूजा पाठ करता हूँ । कुटुम्ब के अन्य लोग भी जल्दी उठते हैं लेकिन एक नवजवान बेटा दुष्ट है । वह सबेरे जल्दी नहीं उठता ।"

यह मोह है । 'मेरा' बेटा जल्दी उठे । कईयों के बेटे नहीं उठते तो कोई हर्ज नहीं लेकिन 'मेरा' बेटा जल्दी उठे । मैं धार्मिक हूँ तो 'मेरे' बेटे को भी धार्मिक होना चाहिए ।

अपने बेटे में इतनी ममता होने के कारण ही दु:ख होता है । भगवान के जो प्यारे भक्त हैं, भगवत तत्व को कुछ समझ रहे हैं उनको आग्रह नहीं होता । बड़े बेटे को जल्दी उठाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन बेटा नहीं उठता है तो चित्त में विक्षिप्त नहीं होते ।

किसीका विरक्ति प्रधान प्रारब्ध होता है, किसीका व्यवहार प्रधान प्रारब्ध होता है । ज्ञान होने के बाद ज्ञानी का जीवन स्वाभाविक चलता है । लेकिन धार्मिक लोगों को इतनी चिंता परेशानी होती है कि : 'अरे ! शुकदेवजी को लंगोटी का भी पता नहीं रहता था, इतने आत्मानंद में डूबे रहते थे । हमारा ध्यान तो ऐसा नहीं लगता । शुकदेवजी जैसा हमारा ध्यान लगे ।'

हजारों वर्ष पहले का मनुष्य, हजारों वर्ष पहले का वातावरण और कई जन्मों के संस्कार थे । उनको ऐसा हुआ । उनको लक्ष्य बनाकर चलते तो जाओ लेकिन लक्ष्य बनाकर विक्षिप्त नहीं होना । हो गया तो हो गया, नहीं हुआ तो नहीं हुआ, लेकिन चित्त को सदा प्रसन्नता से महकता हुआ रखो । ऐसा ध्यान हो गया तो भी स्वप्न, न हुआ तो भी स्वप्न । जिस परमात्मा में शुकदेवजी आकर चले गये, वशिष्ठजी आकर चले गये, श्रीराम आकर चले गये, श्रीकृष्ण आकर चले गये वह परमात्मा अभी तुम्हारा आत्मा है । ऐसा ज्ञान जब तक नहीं होता है तब तक मोह नहीं जाता है ।

तुलसीदासजी ने कहा है :

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

मोह सब व्याधियों का मूल है । उससे भव का शूल फिर पैदा होता है । इसीलिए किसी भी वस्तु में ममता हुई, आसक्ति हुई, मोह हुआ तो समझो कि मरे । किसी भी परिस्थिति में मोह ममता नहीं होनी चाहिए ।

'आज आरती की घण्टी बजाई, प्रार्थना की तो बहुत मजा आया । अहा ... ! रोज ऐसे आरतियाँ करें, घण्टियाँ बजायें और मजा आता रहे ...' तो हररोज ऐसा होगा नहीं । जिस समय सुषुम्णा का द्वार खुला है, मुहूर्त अच्छा है, बुद्धि में सात्विकता है उस समय आरती करते हो तो मजा आता है । जिस समय शरीर में रजो तमोगुण है, कुछ खाया पिया है, शरीर भारी है, प्राण नीचे हैं उस समय आरती करोगे तो मजा नहीं आयेगा ।

मजा आना और न आना आत्मा का स्वभाव नहीं, चिदाभास का स्वभाव है, जीव का स्वभाव है । मजा जीव को आता है । ज्ञानी को मजा और बेमजा नहीं आता । वे तो मस्तराम हैं ।

संसारी आदमी द्वेषी होता है । पामर आदमी को जितना राग होता है, उतना द्वेष होता है । भक्त होता है रागी । भगवान में राग करता है, आरती पूजा में राग करता है, मंदिर मूर्ति में राग करता है । जिज्ञासु में होती है जिज्ञासा । ज्ञानी में कुछ नहीं होता है । ज्ञानी गुणातीत होते हैं । मजे की बात है कि ज्ञानी में सब दिखेगा लेकिन ज्ञानी में कुछ होता नहीं । ज्ञानी से सब गुजर जाता है ।

बुद्धि को शुद्ध करने के लिए आत्मविचार की जरुरत है, ध्यान की जरुरत है, जप की जरुरत है । बुद्धि शुद्ध हो तो जैसे दूसरे शरीर को अपनेसे पृथक् देखते हैं वैसे ही अपने शरीर को भी आप अपनेसे अलग देखेंगे । ऐसा अनुभव जब तक नहीं होता, तब तक बुद्धि में मोह होने की संभावना रहती है ।

थोड़ा सा मोह हट जाता है तब लगता है कि मेरे को रुपयों में मोह नहीं है, स्त्री में मोह नहीं है, मकान में मोह नहीं है, आश्रम में मोह नहीं है । ठीक है । लेकिन प्रतिष्ठा में मोह है कि नहीं है, इसे जरा ढूँढो । देह में मोह है कि नहीं है, जरा ढूँढो । और मोह टूट जाते हैं लेकिन देह का मोह जल्दी नहीं टूटता, लोकेषण (वाहवाही) का मोह जल्दी नहीं टूटता , धन का मोह भी जल्दी से नहीं टूटता ।

'रुपये सूद पर दिये हुए हैं । कथा में जाना है । गुरुदेव बाहर जानेवाले हैं । क्या करें ? सूद पर पैसे जिनको दिये हुए हैं वे कहीं भाग गये तो ?' अरे, वह क्या भागेगा ? भाग भागकर कहाँ तक जायेगा ? स्मशान में ही न ? ... और तुम कितना भी इकठ्ठा करोगे तो भी आखिर स्मशान में ही जाना है । कोई खाकर नहीं भागता, कोई लेकर नहीं भागता । सब यहीं का यहीं पड़ा रह जाता है । केवल बुद्धि में ममता है कि ये मेरे पैसे हैं, ये मेरे कर्जदार हैं । यह केवल बुद्धि का खिलवाड़ है । बुद्धि के ये खिलौने तब तक अच्छे लगते हैं जब तक परमात्मा का ठीक से अनुभव नहीं हुआ है ।

पक्षियों से जरा सीख लो । उनको आज खाने को है, कल का कोई पता नहीं फिर भी पेड़ की डाली पर गुनगुना लेते हैं, कोलाहल कर लेते हैं । कब कहाँ जायेंगे, कोई पता नहीं फिर भी निश्चिंतता से जी लेते हैं ।

हमारे पास रहने को घर है, खाने को अन्न है महीने भर का, साल भर का । फिर भी दे धमाधम ! सामान सौ साल का, पता पल का नहीं ।

जिनको बैठने का ठिकाना नहीं, डाल पर बैठ लेते हैं, दूसरे पल कौन सी डाल पर जाना है, कोई पता नहीं, ऐसे पक्षी भी आनंद से जी लेते हैं । क्या खायेंगे, कहाँ खायेंगे, कोई पता नहीं। उनका कोई कार्यक्रम नहीं होता कि आज वहाँ 'डिनर' (भोज) है । फिर भी जी लेते हैं । भूख के कारण नहीं मरते, रहने का स्थान नहीं मिलता इसके कारण नहीं मरते । मौत जब आती है तब मरते हैं ।

मुर्दे को प्रभु देत है, कपड़ा लकड़ा आग ।

जिन्दा नर चिन्ता करे, ता के बड़े अभाग ॥

चिन्ता यदि करनी है तो इस बात की करो कि पाँच वर्ष के ध्रुव को वैराग्य हुआ, प्रहलाद को वैराग्य हुआ, पर मुझे क्यों नहीं होता ? रामतीर्थ को 22 साल की उम्र में वैराग्य हुआ और परमात्मा को पा लिया । मुझे 25 साल हो गये, 40 साल हो गये, 45 साल हो गये फिर भी वैराग्य नहीं होता ?

संसार की चाह अभी भी करते हो ! संसार के नश्वर धन की वसूली करना चाहते हो !

ऐसा धन पा लो कि ब्रह्माजी का पद, कुबेर का धन, इन्द्र का ऐश्वर्य तुम्हारे आगे तुच्छ दिखे । तुममें इतना सामर्थ्य है ।

वह विद्याधरी शिला से वापस बाहर आकर वशिष्ठजी से कह रही है कि : “महाराज ! आइए ।”

वशिष्ठजी बोले : “मैं तो नहीं आ सकता हूँ।”

जिसकी धारणाशक्ति सिद्ध हो गई है वह अंतवाहक शरीर से दीवार के भीतर प्रवेश कर लेगा । अंतवाहक शरीर की साधना न की हो तो भले सिर फूट जाये लेकिन दीवार के भीतर से न जा सकेगा । सुरंग बनाये बिना आदमी योग की कला से पहाड़ में से आर पार गुजर सकता है । ऐसी शक्ति तुम्हारे सबके भीतर छुपी हुई है । वह शक्ति विकसित नहीं हुई । स्थूल शरीर के साथ जुड़ गये इसलिए वह शक्ति स्थूलरुप हो गई है ।

पानी भाप बन जाता है तो बारीक से बारीक छेद में से निकल जाता है लेकिन वह पानी यदि ठण्डा होकर बर्फ बन जाता है तो छोटी बड़ी खिड़की से भी नहीं निकल पाता । ऐसे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति यदि स्थूल होती है तो गति नहीं होती है और सूक्ष्म हो जाती है तो गति होती है ।

वशिष्ठजी महाराज ने उस विद्याधरी की चित्तवृत्ति से अपनी चित्तवृत्ति मिला दी और शिला में प्रविष्ट हो गये । इस सृष्टि से एक नयी सृष्टि में पहुँच गये । वहाँ उस महिला ने एक समाधिस्थ योगी को दिखाते हुए कहा कि :“वे मेरे पति हैं। उनको संसार से वैराग्य हो गया है । अब मेरी तरफ आँख उठाकर देखते तक नहीं हैं।”

जब योगी ने आँखें खोलीं तो विघाधरी ने कहा:

“ये वशिष्ठजी महाराज हैं। दूसरी सृष्टि से आये हैं । श्रीराम के गुरु हैं । महापुरुषों का स्वागत करना सत्पुरुषों का स्वभाव है । इनका अर्ध्य पाद्य से स्वागत कीजिये ।”

उस योगी ने वशिष्ठजी का स्वागत किया और कहा:

“हे ब्राह्मण ! यह सृष्टि मैंने इच्छाशक्ति से बनायी थी । पत्नी की इच्छा हुई तो संकल्प से पत्नी भी बना ली । फिर देखा कि जिस परमात्मा की सत्ता से संकल्प द्वारा इतनी घटना घट सकती है उस परमात्मा में ही क्यों न ठहर जायें ? अतः मैं अपनी चित्तवृत्ति को समेटकर, परमानंद में मग्न होकर आत्मशांति में ले आया । अब कोई भोग भोगने की मेरी इच्छा नहीं है और इस सृष्टि को चलाने की भी मेरी इच्छा नहीं है ।

मेरी सेवा करते करते इस स्त्री में भी धारणाशक्ति सिद्ध हो गई है, इच्छाशक्ति के अनुसार घटनाएँ घटने लग जाती हैं लेकिन इसकी बुद्धि में से मोह अभी गया नहीं है । इसको भोग की इच्छा है । भोग हमेशा अपना नाश करने में संलग्न होता है । आप इसको आशीर्वाद दें कि इसकी भोग की इच्छा निवृत्त हो जाये और परमात्मा में चित्तवृत्ति लग जाये । और ... अब मैं इस सृष्टि को धारण करने का संकल्प समेट रहा हूँ । आप जल्दी से जल्दी इस सृष्टि से बाहर पधारें । मेरे संकल्प में यह सृष्टि ठहरी है । संकल्प समेटते ही इसका प्रलय हो जायेगा ।”

वशिष्ठजी कहते हैं : “मैं उस सृष्टि से रवाना हुआ और मेरे देखते देखते उस ब्रह्माजी ने संकल्प समेटा तो सृष्टि का प्रलय होने लगा । सूर्य तपने लगा, प्रलयकाल की वायु चलने लगी । पहाड़ टूटने लगे, लोग मरने लगे, वृक्ष सूखने लगे । पक्षी गिरने लगे ।”

तुम्हारे अंदर वही परमात्मशक्ति इतनी है कि यदि वह विकसित हो जाये तो तुम इच्छाशक्ति से नयी सृष्टि बना सकते हो । हर इन्सान में ऐसी ताकत है । लेकिन मोह के कारण, भोगवासना के कारण नयी सृष्टि तो क्या, मामूली घर बनाते हैं तो भी ‘लोन’ (उधार) लेना पड़ता है ... वह भी मिलता नहीं और धक्के खाने पड़ते हैं ।

केवल निधि

जिसको केवली कुम्भक सिद्ध हो जाता है, वह पूजने योग्य बन जाता है । यह योग की एक ऐसी कुंजी है कि छः महीने के दृढ़ अभ्यास से साधक फिर वह नहीं रहता जो पहले था । उसकी मनोकामनाएँ तो पूर्ण हो ही जाती हैं, उसका पूजन करके भी लोग अपनी मनोकामना सिद्ध करने लगते हैं ।

जो साधक पूर्ण एकाग्रता से इस पुरुषार्थ को साधेगा, उसके भाग्य का तो कहना ही क्या ? उसकी व्यापकता बढ़ती जायेगी । महानता का अनुभव होगा । वह अपना पूरा जीवन बदला हुआ पायेगा ।

बहुत तो क्या, तीन ही दिनों के अभ्यास से चमत्कार घटेगा । तुम, जैसे पहले थे वैसे अब न रहोगे । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षडविकार पर विजय प्राप्त करोगे।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि : "मेरे चिरजीवन और आत्मलाभ का कारण प्राणकला ही है ।"

प्राणायाम की विधि इस प्रकार है:

स्नान शौचादि से निपटकर एक स्वच्छ आसन पर पद्मासन लगाकर सीधे बैठ जाओ । मस्तक, ग्रीवा और छाती एक ही सीधी रेखा में रहें । अब दाहिने हाथ के अँगूठे से दायाँ नथुना बन्द करके बाँयें नथुने से श्वास लो । प्रणव का मानसिक जप जारी रखो । यह पूरक हुआ । अब जितने समय में श्वास लिया उससे चार गुना समय श्वास भीतर ही रोके रखो । हाथ के अँगूठे और उँगलियों से दोनों नथुने बन्द कर लो । यह आभ्यांतर कुम्भक हुआ । अंत में हाथ का अँगूठा हटाकर दायें नथुने से श्वास धीरे धीरे छोड़ो । यह रेचक हुआ । श्वास लेने में (पूरक में)

जितना समय लगाओ उससे दुगुना समय श्वास छोड़ने में (रेचक में) लगाओ और चार गुना समय कुम्भक में लगाओ । पूरक कुम्भक रेचक के समय का प्रमाण इस प्रकार होगा 1:4:2

दायें नथुने से श्वास पूरा बाहर निकाल दो, खाली हो जाओ । अंगूठे और उँगलियों से दोनों नथुने बन्द कर लो । यह हुआ बहिर्कुम्भक । फिर दायें नथुने से श्वास लेकर, कुम्भक करके बाँयें नथुने से बाहर निकालो । यह हुआ एक प्राणायम ।

पूरक ... कुम्भक ... रेचक ... कुम्भक ... पूरक ... कुम्भक ... रेचक ।

इस समग्र प्रक्रिया के दौरान प्रणव का मानसिक जप जारी रखो ।

एक खास महत्व की बात तो यह है कि श्वास लेने से पहले गुदा के स्थान को अन्दर सिकोड़ लो यानी ऊपर खींच लो। यह है मूलबन्ध ।

अब नाभि के स्थान को भी अन्दर सिकोड़ लो । यह हुआ उड्डियान बन्ध ।

तीसरी बात यह है कि जब श्वास पूरा भर लो तब ठोंड़ी को, गले के बीच में जो खड्डा है कंठकूप, उसमें दबा दो । इसको जालन्धर बन्ध कहते हैं।

इस त्रिबंध के साथ यदि प्राणायाम होगा तो वह पूरा लाभदायी सिद्ध होगा एवं प्राय: चमत्कारपूर्ण परिणाम दिखायेगा ।

पूरक करके अर्थात् श्वास को अंदर भरकर रोक लेना इसको आभ्यांतर कुम्भक कहते हैं । रेचक करके अर्थात् श्वास को पूर्णतया बाहर निकाल दिया गया हो, शरीर में बिलकुल श्वास न हो, तब दोनों नथुनों को बंद करके श्वास को बाहर ही रोक देना इसको बहिर्कुम्भक कहते हैं । पहले आभ्यान्तर कुम्भक और फिर बहिर्कुम्भक करना चाहिए ।

आभ्यान्तर कुम्भक जितना समय करो उससे आधा समय बहिर्कुम्भक करना चाहिए । प्राणायाम का फल है बहिर्कुम्भक । वह जितना बढ़ेगा उतना ही तुम्हारा जीवन चमकेगा । तन मन में स्फूर्ति और ताजगी बढ़ेगी । मनोराज्य न होगा ।

इस त्रिबन्धयुक्त प्राणायाम की प्रक्रिया में एक सहायक एवं अति आवश्यक बात यह है कि आँख की पलकें न गिरें । आँख की पुतली एकटक रहे । आँखें खुली रखने से शक्ति बाहर बहकर क्षीण होती है और आँखे बन्द रखने से मनोराज्य होता है । इसलिए इस प्राणायम के समय आँखे अर्द्धोन्मीलित रहें आधी खुली, आधी बन्द । वह अधिक लाभ करती है ।

एकाग्रता का दूसरा प्रयोग है जिह्वा को बीच में रखने का । जिह्वा तालू में न लगे और नीचे भी न छुए । बीच में स्थिर रहे । मन उसमें लगा रहेगा और मनोराज्य न होगा । परंतु इससे भी अर्द्धोन्मीलित नेत्र ज्यादा लाभ करते हैं ।

प्राणायाम के समय भगवान या गुरु का ध्यान भी एकाग्रता को बढ़ाने में अधिक फलदायी सिद्ध होता है । प्राणायाम के बाद त्राटक की क्रिया करने से भी एकाग्रता बढ़ती है, चंचलता कम होती है, मन शांत होता है ।

प्राणायाम करके आधा घण्टा या एक घण्टा ध्यान करो तो वह बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा ।

एकाग्रता बड़ा तप है। रातभर के किए हुए पाप सुबह के प्राणायाम से नष्ट होते हैं । साधक निष्पाप हो जाता है । प्रसन्नता छलकने लगती है ।

जप स्वाभाविक होता रहे यह अति उत्तम है । जप के अर्थ में डूबे रहना, मंत्र का जप करते समय उसके अर्थ की भावना रखना । कभी तो जप करने के भी साक्षी बन जाओ । 'वाणी, प्राण जप करते हैं । मैं चैतन्य, शांत, शाश्वत् हूँ ।' खाना पीना, सोना जगना, सबके साक्षी बन जाओ । यह अभ्यास बढ़ता रहेगा तो केवली कुम्भक होगा । तुमने अगर केवली कुम्भक सिद्ध किया हो और कोई तुम्हारी पूजा करे तो उसकी भी मनोकामना पूरी होगी ।

प्राणायाम करते करते सिद्धि होने पर मन शांत हो जाता है । मन की शांति और इन्द्रियों की निश्चलता होने पर बिना किये भी कुम्भक होने लगता है । प्राण अपने आप ही बाहर या अंदर स्थिर हो जाता है और कलना का उपशम हो जाता है । यह केवल, बिना प्रयत्न के कुम्भक हो जाने पर केवली कुम्भक की स्थिति मानी गई है। केवली कुम्भक सद्गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में करना सुरक्षापूर्ण है।

मन आत्मा में लीन हो जाने पर शक्ति बढ़ती है क्योंकि उसको पूरा विश्राम मिलता है । मनोराज्य होने पर बाह्य क्रिया तो बन्द होती है लेकिन अंदर का क्रियाकलाप रुकता नहीं । इसीसे मन श्रमित होकर थक जाता है ।

ध्यान के प्रारंभिक काल में चेहरे पर सौम्यता, आँखों में तेज, चित्त में प्रसन्नता, स्वर में माधुर्य आदि प्रगट होने लगते हैं । ध्यान करनेवाले को आकाश में श्वेत त्रसरेणु (श्वेत कण) दिखते हैं । यह त्रसरेणु बड़े होते जाते हैं । जब ऐसा दिखने लगे तब समझो कि ध्यान में सच्ची प्रगति हो रही है ।

केवली कुम्भक सिद्ध करने का एक तरीका और भी है । रात्रि के समय चाँद की तरफ दृष्टि एकाग्र करके, एकटक देखते रहो । अथवा, आकाश में जितनी दूर दृष्टि जाती हो, स्थिर दृष्टि करके,

अपलक नेत्र करके बैठे रहो । अडोल रहना । सिर नीचे झुकाकर खुर्राटे लेना शुरु मत करना । सजग रहकर, एकाग्रता से चाँद पर या आकाश में दूर दूर दृष्टि को स्थिर करो ।

जो योगसाधना नहीं करता वह अभागा है । योगी तो संकल्प से सृष्टि बना देता है और दूसरों को भी दिखा सकता है । चाणाक्य बड़े कूटनीतिज्ञ थे । उनका संकल्प बड़ा जोरदार था । उनके राजा के दरबार में कुमागिरि नामक एक योगी आये । उन्होंने चुनौती के उत्तर में कहा :"मैं सबको भगवान का दर्शन करा सकता हूँ ।"

राजा ने कहा : "कराइए ।"

उस योगी ने अपने संकल्पबल से सृष्टि बनाई और उसमें विराटरुप भगवान का दर्शन सब सभासदों को कराया । वहाँ चित्रलेखा नामक राजनर्तकी थी । उसने कहा : "मुझे कोई दर्शन नहीं हुए।"

योगी: "तू स्त्री है इससे तुझे दर्शन नहीं हुए ।"

तब चाणक्य ने कहा : "मुझे भी दर्शन नहीं हुए ।"

वह नर्तकी भले नाचगान करती थी फिर भी वह एक प्रतिभासंपन्न नारी थी । उसका मनोबल दृढ़ था । चाणक्य भी बड़े संकल्पवान थे । इससे इन दोनों पर योगी के संकल्प का प्रभाव नहीं पड़ा । योगबल से अपने मन की कल्पना दूसरों को दिखाई जा सकती है । मनुष्य के अलावा जड़ के ऊपर भी संकल्प का प्रभाव पड़ सकता है। खट्टे आम का पेड़ हाफुस आम दिखाई देने लगे, यह संकल्प से हो सकता है ।

मनोबल बढ़ाकर आत्मा में बैठे जाओ, आप ही ब्रह्म बन जाओ । यही संकल्पबल की आखिरी उपलब्धि है ।

निद्रा, तन्द्रा, मनोराज्य, कब्जी, स्वप्नदोष, यह सब योग के विघ्न हैं । उनको जीतने के लिए संकल्प काम देता है । योग का सबसे बड़ा विघ्न है वाणी । मौन से योग की रक्षा होती है । नियम से और रुचिपूर्वक किया हुआ योगसाधन सफलता देता है । निष्काम सेवा भी बड़ा साधन है किन्तु सतत बहिर्मुखता के कारण निष्काम सेवा भी सकाम हो जाती है । देह में जब तक आत्म सिद्धि है तब तक पूर्ण निष्काम होना असंभव है ।

हम अभी गुरुओं का कर्जा चढ़ा रहे हैं । उनके वचनों को सुनकर अगर उन पर अमल नहीं करते तो उनका समय बरबाद करना है । यह कर्जा चुकाना हमारे लिए भारी है । ... लेकिन संसारी सेठ के कर्जदार होने के बजाय संतो के कर्जदार होना अच्छा है और उनके कर्जदार होने के बजाय साक्षात्कार करना श्रेष्ठ है । उपदेश सुनकर मनन, निदिध्यासन करें तो हम उस कर्जे को चुकाने के लायक होते हैं ।

ज्ञानयोग

1) जिसको जीव और जगत मिथ्या लगता है उसके लिए ज्ञानमार्ग है, जिसको सत्य लगता है उसके लिए योगमार्ग और भक्तिमार्ग है ।

2) जिसको अंत:करण में राग द्वेष हैं वह चाहे आत्मा अनात्मा का विवेक करे चाहे चित्त का निरोध करे, उसको ज्ञाननिष्ठा नहीं होती है ।

3) स्थूल कामनाओं का नाश एकांतसेवन से होता है । स्वप्न में जो सूक्ष्म कामनाएँ दिखती हैं उनका नाश भगवद्ध्यान से और सत्वासना के अभ्यास से होता है ।

4) विक्षेप उत्पन्न करनेवाले कर्म का त्याग संन्यास है । गेरुए वस्त्र पहननेमात्र से कोई संन्यासी नहीं होता । गार्गी, व्याध, वशिष्ठजी इत्यादि ने संन्यासी के वस्त्र धारण नहीं किये थे फिर भी वे ज्ञानी थे ।

5) व्युत्थान दशा में भगवद् भजन के आनंद में जो निमग्न रहता है उसको द्वैत का संताप नहीं लगता।

6) पराभक्ति का अर्थ है द्वैतदृष्टिरहित भावना ।

7) जिस धृति में से चित्त का निरोध होता हो और एकाग्र अवस्था आती हो उसे सात्त्विक धृति कहते हैं।

8) सात्त्विक संन्यास वैराग्यपूर्वक लिया जाता है, राजसिक संन्यास कायाक्लेश और भय से लिया जाता है तथा तामसिक संन्यास मूढता से लिया जाता है ।

9) जैसे दीपक जलाने के लिए तेल, बत्ती आवश्यक हैं वैसे ही '**तत्त्वमसि**' महावाक्य से उत्पन्न होनेवाली ब्रह्माकार वृत्ति के लिए श्रवण, मनन, ध्यान, शम, दम आदि आवश्यक हैं । एक बार वह ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न हो जाए तो वह अज्ञान का नाश कर देती है । ब्रह्माकार वृत्ति अपने विषय को प्रकाशित करने के लिए किसी कर्म या अभ्यास की अपेक्षा नहीं करती । एक बार घट का ज्ञान हो जाए तो उसको दृढ़ करने के लिए घट के आकार की पुनरावृत्ति या कर्म की आवश्यकता नहीं है ।

10) मृगजल देखने का आनंद नष्ट हो जाए तो तत्त्वज्ञानी पुरुष उसके लिए शोक नहीं करते । जगत का कोई भाव तत्त्वज्ञ के चित्त पर प्रभाव नहीं रखता ।

11) आत्मा नित्य होने से वह घट की तरह या कीट भ्रमर की तरह उत्पन्न नहीं होता । नदी को सागर प्राप्त होती है ऐसे आत्मा प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह सर्वगत है । दूध में विकार होकर दही बनता है वैसे आत्मा में विकार नहीं होता, क्योंकि वह स्थाणु है । सुवर्ण की शुद्धि की तरह आत्मा कोई संस्कार की अपेक्षा नहीं करता क्योंकि वह अचल है । उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति और संस्कृति ये चारों धर्म कर्म के हैं ।

12) जैसे घटाकाश महाकाश के रुप में नित्य है वैसे आत्मा परमात्मा के रुप में नित्य है । कंठ में मणि नित्य प्राप्त है फिर भी विस्मरण हो जाने से वह अप्राप्त सा लगता है । स्मरण आ जाने मात्र से वह मणि प्राप्त हो जाता है । उसी प्रकार अज्ञान का आवरण भंग होनेमात्र से आत्मा की प्राप्ति हो जाती है, वह नित्य प्राप्त ही था ऐसा ज्ञान हो जाता है ।

13) अज्ञान दशा उपाधि को उत्पन्न करती है और ज्ञानदशा उपाधि का ग्रास करती है ।

14) अध्यस्त के विकारी धर्म से अधिष्ठान में विकार पैदा नहीं होता । मृगजल से मरुभूमि कभी गीली नहीं होती ।

15) आत्मा का सुख अपनी बुद्धि का प्रसाद मिलने से, बुद्धि निर्मल होने से, रजो तमोगुण के मल से रहित होने से उत्पन्न होता है । आत्मा का सुख विषयों के संग से उत्पन्न नहीं होता और निद्रा या आलस्य से नहीं मिलता ।

16) जिसका मन सर्व भूतों में समान ब्रह्मभाव से स्थित और निश्चल हुआ है उसने इस जन्म को जीत लिया है ।

17) ब्रह्मज्ञानी सर्व ब्रह्मरुप देखते हुए व्युत्थान अवस्था में भी ब्रह्म में स्थित रहते हैं।

18) भगवान कहते हैं कि : 'सतत मेरा भजन करनेवाले को मैं बुद्धियोग देता हूँ।' यहाँ बुद्धियोग का अर्थ है ज्ञाननिष्ठा । ऐसी निष्ठा जब आती है तब जैसे नदियाँ अपना नाम रुप छोड़कर सागर में प्रवेश करती हैं वैसे ही भक्त भगवत्स्वरुप में प्रवेश करते हैं।

19) अग्नि का स्फुलिंग अग्निरुप ही है, अग्नि का अंश नहीं है। उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म ही है, ब्रह्म का अंश नहीं है । निरंश स्वरुप में अंश अंशी की कल्पना बनती नहीं। अंश भाव कल्पित उपाधि के स्वीकार करने के कारण उपचार से बोला जाता है ।

20) देह के उपादानभूत अविद्या का नाश होने के बाद भी कुछ काल तक ज्ञानी को देहादि का भान रहता है । इस जीवन्मुक्तावस्था को ध्यान में लेकर भगवान ने कहा है कि ज्ञानी और तत्त्वदर्शी पुरुष जिज्ञासुओं को ज्ञान देते हैं।

21) सोये हुए आदमी को उसको नाम लेकर कोई पुकारता है तो वह जाग जाता है । उसको जगाने के लिए अन्य किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं है। उसी प्रकार अज्ञान में सोया हुआ जीव अपने निज आत्मस्वरुप का गुणगान सुनकर जाग जाता है ।

22) आत्म प्राप्ति के राही के लिए महापुरुषों की सेवा अत्यंत कल्याणकारी है। बिना सेवा के ब्रह्मविद्या मिलती या फलीभूत नहीं होती । ब्रह्मविद्या के ठहराव के लिए शुद्ध अंत करण की आवश्यकता है । सेवा से अंत करण शुद्ध होता है, नम्रता आदि सद्गुण आते हैं। शाखाओं का झुकना फलयुक्त होने का चिह्न है, इसी तरह नम्र तथा शुद्ध अंत करण में ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है । यही ब्रह्मविद्या की पहचान है।

23) जप पूर्ण भावसहित करना चाहिए । हृदय में सत् चित् आनंदस्वरुप विभु की टंकार होनी चाहिए । इस समय अपने कानों को भी अपने श्वासों के चलने की आवाज न आए । लक्ष्य हमेशा यह रहे : **सोऽहम् ।** मैं वही हूँ । इस स्मरण से अभय हो जाना चाहिए।

24) निरीक्षण करो कि किन किन कारणों से उन्नति नहीं हो रही है । उन्हें दूर करो । बार बार उन्हीं दोषों की पुनरावृत्ति करना उचित नहीं। अगर देखभाल नहीं करोगे तो उम्र यूँ ही बीत जायेगी परंतु बननेवाली बात नहीं बनेगी। जितना चलना चाहिए उतना चलना होगा, जितना चल सकते हो उतना नहीं। आशिक नींद में ग्रस्त नहीं होते। व्याकुल हृदय से तड़पते हुए प्रतिक्षा करते हैं। सदा जागृत रहते हैं। सदा ही सावधान रहा करते हैं।

25) आप लोगों की प्राण संगली उसी तरह चलनी चाहिए जैसे तेल की अटूट धारा । गुरुमंत्ररुपी छड़ी को हमेशा अपने साथ रखो ताकि जब भी जरुरत पड़े संसार के काम क्रोधादि कुत्तों को उससे मारकर भगा सको।

26) मानव आते हुए भी रोता है और जाते हुए भी रोता है । जो वक्त रोने का नहीं तब भी रोता है । केवल एक पूर्ण सद्गुरु में ही ऐसा सामर्थ्य है जो इस जन्म मरण के मूल कारण अज्ञान को काटकर मनुष्य को रोने से बचा सकते हैं। केवल गुरु ही आवागमन के चक्कर से, काल की महान ठोकरों से बचाकर शिष्य को संसार के दु:खों से ऊपर उठा देते हैं। शिष्य के चिल्लाने पर भी वे ध्यान नहीं देते । गुरु के बराबर हितैषी संसार में कोई भी नहीं हो सकता।

27) त्रिशिखी ब्राह्मण के पूछने पर आदित्य ने कहा: "कुंभ के समान देह में भरे हुए वायु को रोकने से अर्थात् कुम्भक करने से सब नाड़ियाँ वायु से भर जाती हैं। ऐसा करने से देश वायु चलने लगते हैं। ह्रदयकमल का विकास होता है । वहाँ पापरहित वासुदेव परमात्मा को देखें। सुबह, दोपहर, शाम और आधी रात को चार बार अस्सी अस्सी कुम्भक करें तो अनुपम लाभ होता है। मात्र एक दिन करने से ही साधक सब पापों से छूट जाता है । इस प्रकार प्राणायामपरायण मनुष्य तीन साल में सिद्ध योगी बन जाता है । वायु को जीतनेवाला जितेन्द्रिय, थोड़ा भोजन करनेवाला, थोड़ा सोनेवाला, तेजस्वी और बलवान् हो जाता है तथा अकाल मृत्यु का उल्लंघन करके दीर्घ आयु को प्राप्त होता है ।

प्राणायाम तीन कोटि के होते हैं : उत्तम, मध्यम और अधम । पसीना उत्पन्न करनेवाला प्राणायाम अधम है। जिस प्राणायाम में शरीर काँपता है वह मध्यम है । जिसमें शरीर उठ जाता है वह प्राणायाम उत्तम कहा गया है।

अधम प्राणायाम में व्याधि और पापों का नाश होता है । मध्यम में पाप, रोग और महा व्याधि का नाश होता है। उत्तम में मल मूत्र अल्प हो जाते हैं, भोजन थोड़ा होता है, इन्द्रियाँ और बुद्धि तीव्र हो जाती हैं। वह योगी तीनों काल को जाननेवाला हो जाता है ।

रेचक और पूरक को छोड़कर जो कुम्भक ही करता है उसको तीनों कालों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

प्राणायाम का अभ्यास करनेवाला योगी नाभिकंद में, नासिका के अग्र भाग में और पैर के अँगूठे में सदा अथवा संध्याकाल में प्राण को धारण करे तो वह योगी सब रोगों से मुक्त होकर अशांतिरहित जीवन जीता है ।

नाभिकंद में प्राण धारण करने से कुक्षि के रोग नष्ट होते हैं। नासा के अग्र भाग में प्राण धारण करने से दीर्घायु होता है और देह हल्का होता है । ब्रह्ममुहूर्त में वायु को जिह्वा से खींचकर तीन मास तक पिये तो महान् वाक्सिद्धि होती है । छः मास के अभ्यास से महा रोग का नाश होता है।

रोगादि से दूषित जिस जिस अंग में वायु धारण किया जाता है वह अंग रोग से मुक्त हो जाता है।" (त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद्)

28) प्राण सब प्रकार के सामर्थ्य का अधिष्ठान होने से प्राणायाम सिद्ध होने पर अनंतशक्ति भंडार के द्वार खुल जाते हैं। अगर कोई साधक प्राणतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर उस पर अपना अधिकार प्राप्त कर ले तो जगत में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिसे वह अपने अधिकार में न कर ले। वह अपनी इच्छानुसार सूर्य और चन्द्र को भी गेंद की तरह उनकी कक्षा में से विचलित कर सकता है। अणु से लेकर सूर्य तक जगत की तमाम चीजों को अपनी मर्जी अनुसार संचालित कर सकता है । योगाभ्यास पूर्ण होने पर योगी समस्त विश्व पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकता है। उसके संकल्प बल से मृत प्राणी जिन्दे हो सकते हैं। जिन्दे उसकी आज्ञानुसार कार्य करने को बाध्य हो जाते हैं। देवता और पितृलोकवासी जीवात्मा उसके हुक्म को पाते ही हाथ जोड़कर उसके आगे खड़े हो जाते हैं। तमाम रिद्धि सिद्धियाँ उसकी दासी बन जाती हैं। प्रकृति की समग्र शक्तियों का वह स्वामी बन जाता है क्योंकि उस योगी ने प्राणायाम सिद्ध करके समष्टि प्राण को अपने काबू में किया है ।

जो प्रतिभावान युगप्रवर्तक अद्भुत शक्ति का संचार कर मानव समाज को ऊँची स्थिति पर ले जाते हैं, वे अपने प्राण में ऐसे उच्च और सूक्ष्म आन्दोलन उत्पन्न कर सकते हैं कि अन्य के मन पर उनका प्रगाढ़ प्रभाव होता है । हजारों मनुष्यों का दिल उनकी और आकर्षित होता है । लाखों करोड़ों लोग उनके उपदेश ग्रहण कर लेते हैं। विश्व में जो भी महापुरुष हो गये हैं उन्होंने किसी भी रीति से प्राणशक्ति को नियंत्रित करके अलौकिक शक्ति प्राप्त की होती है। किसी भी क्षेत्र में समर्थ व्यक्ति का प्रभाव प्राण के संयम से ही उत्पन्न हुआ है ।

29) यदि पर्वत के समान अनेक योजन विस्तारवाले पाप हों तो भी ध्यानयोग से छेदन हो जाते हैं। इसके सिवाय दूसरे किसी भी उपाय से कभी भी उनका छेदन नहीं होता ।

(ध्यान बिन्दु उपनिषद्)

ज्ञानगोष्ठी

प्र० : त्याग, वैराग्य और उपरति में क्या भेद है?

उ० : विषय को सामने न आने देना त्याग है । विषय सामने रहते हुए उसमें प्रेम न होना वैराग्य है। वस्तु सामने रहते हुए भी उसमें न तो भोगबुद्धि हो और न द्वेष हो यह उपरति है ।

प्र० : वैराग्य कितने प्रकार का होता है ?

उ० : सामान्यतया गुण भेद से वैराग्य तीन प्रकार के हैं ।

1) जो वैराग्य संसार से ग्लानि और भगवान से प्रेम होने पर होता है, वह सात्त्विक है ।

2) जो प्रसिद्धि या प्रतिष्ठा की दृष्टि से विरक्त होता है, वह राजस है ।

3) जो सबको नीची दृष्टि से देखता है तथा अपनेको बड़ा समझता है वह तामस वैराग्य है ।

योगदर्शन में पर और अपर भेद से दो प्रकार के वैराग्य बतलाये गये हैं । इनमें अपर वैराग्य चार प्रकार के हैं:

1) यतमान : जिसमें विषयों को छोड़ने का प्रयत्न तो रहता है, किन्तु छोड़ नहीं पाता यह यतमान वैराग्य है ।

2) व्यतिरेकी : शब्दादि विषयों में से कुछ का राग तो हट जाये किन्तु कुछ का न हटे तब व्यतिरेकी वैराग्य समझना चाहिए ।

3) एकेन्द्रिय : मन भी एक इन्द्रिय है । जब इन्द्रियों के विषयों का आकर्षण तो न रहे, किन्तु मन में उनका चिन्तन हो तब एकेन्द्रिय वैराग्य होता है । इस अवस्था में प्रतिज्ञा के बल से ही मन और इन्द्रियों का निग्रह होता है ।

4) वशीकार : वशीकार वैराग्य होने पर मन और इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं तथा अनेक प्रकार के चमत्कार भी होने लगते हैं। यहाँ तक तो 'अपर वैराग्य' हुआ ।

जब गुणों का कोई आकर्षण नहीं रहता, सर्वज्ञता और चमत्कारों से भी वैराग्य होकर स्वरुप में स्थिति रहती है तब 'पर वैराग्य' होता है अथवा एकाग्रता से जो सुख होता है उसको भी त्याग देना, गुणातीत हो जाना ही 'पर वैराग्य' है।

वैराग्य के दो भेद हैं : देह से वैराग्य और गेह से वैराग्य ।

शरीर से वैराग्य होना प्रथम कोटि का वैराग्य है तथा अहंता ममता से ऊपर उठ जाना दूसरे प्रकार का वैराग्य है ।

लोगों को घर से तो वैराग्य हो जाता है, परंतु शरीर से वैराग्य होना कठिन है। इससे भी कठिन है शरीर का अत्यन्त अभाव अनुभव करना। यह तो सद्गुरु की विशेष कृपा से किसी–किसीको ही होता है ।

बालक जन्मे तो वह पढ़ेगा या नहीं, विवाह करेगा या नहीं, नौकरी धंधा करेगा या नहीं इसमें शंका है परंतु वह मरेगा या नहीं इसमें कोई शंका है? हम भी इन्हीं बालकों में हैं ।

हम धनवान् होंगे या नहीं होंगे, यशस्वी होंगे या नहीं, चुनाव जीतेंगे या नहीं इसमें शंका हो सकती है परंतु भैया ! हम मरेंगे या नहीं, इसमें कोई शंका है?

विमान उड़ने का समय निश्चित होता है, बस चलने का समय निश्चित होता है, गाड़ी छूटने का समय निश्चित होता है परन्तु इस जीवन की गाड़ी के छूटने का कोई निश्चित समय है?

हम कहाँ रहते हैं? मृत्युलोक में। यहाँ जो भी आता है वह मरनेवाला आता है । मरनेवालों के साथ का सम्बन्ध कब तक ...?

मृत्यु अनिवार्य है, बिल्कुल निश्चित है । इसके लिए आप कुछ तैयारी करते हैं या नहीं ? करते हैं तो दृढ़तापूर्वक करें और नहीं करते हैं तो आज से ही शुरु कर दें ।

आत्म साक्षात्कार में, ईश्वर साक्षात्कार में तीन इच्छाएँ हमें ईश्वर से अलग रखती हैं । हम यदि ये तीन इच्छाएँ न करें तो तुरंत अलौकिक साम्राज्य का स्वर हमें सुनाई पड़ेगा । वे तीन इच्छाएँ हैं : 1) जीने की इच्छा 2) करने की इच्छा 3) जानने की इच्छा ।

जीने की इच्छा न करें तो भी यह देह तो जियेगी ही । कुछ करने की इच्छा न करें तो भी सहज, प्रारब्धवेग से कर्म हो ही जायेगा । जानने की इच्छा न करें तो जिससे सब जाना जाता है ऐसा अपना स्वभाव प्रगट होने लगेगा ।

ये तीन इच्छाएँ ईश्वर साक्षात्कार में बाधक बनती हैं। भैया ! साहस करो । जिन्होंने इच्छा छोड़ी है वे धन्य हो गये हैं। अपने को दुर्बल मानना छोड़ दो । आपमें ईश्वरीय स्वर, ईश्वरीय आनंद भरपूर है । भैया ! आप स्वयं ही वह हैं, केवल इन तीन बातों से सावधान रहो ।

ईश्वर के मार्ग पर चलनेवाले सौभाग्यशाली भक्तों को ये छः बातें जीवन में अपना लेनी चाहिए:

1) ईश्वर को अपना मानो । 'ईश्वर मेरा है । मैं ईश्वर का हूँ।'

2) जप, ध्यान, पूजा, सेवा खूब प्रेम से करो।

3) जप, ध्यान, भजन, साधना को जितना हो सके उतना गुप्त रखो।

4) जीवन को ऐसा बनाओ कि लोगों में आपकी माँग हुआ करे। उन्हें आपकी अनुपस्थिति चुभे। कार्य में कुशलता और चतुराई बढ़ाये । प्रत्येक क्रिया कलाप, बोल चाल सुचारु रुप से करें। कम समय में, कम खर्च में सुन्दर कार्य करें। अपनी आजीविका के लिए, जीवननिर्वाह के लिए जो कार्य करें उसे कुशलतापूर्वक करें, रसपूर्वक करें। इससे शक्तियों का विकास होगा । फिर वह कार्य भले ही नौकरी हो। कुशलतापूर्वक करने से कोई विशेष बाह्म लाभ न होता हो फिर भी इससे आपकी योग्यता बढ़ेगी, यही आपकी पूँजी बन जाएगी । नौकरी चली जाए तो भी यह पूँजी आपसे कोई छीन नहीं सकता । नौकरी भी इस प्रकार करो कि स्वामी प्रसन्न हो जाये । यह सब रुपयों पैसों के लिए, मान बड़ाई के लिए, वाहवाही के लिए नहीं परंतु अपने अंत:करण को निर्मल करने

के लिए करें जिससे परमात्मा के लिए आपका प्रेम बढ़े । ईश्वरानुराग बढ़ाने के लिए ही प्रेम से सेवा करें, उत्साह से काम धंधा करें।

5) व्यक्तिगत खर्च कम करें। जीवन में संतोष लाएँ।

6) सदैव श्रेष्ठ कार्य में लगे रहें। समय बहुत ही मूल्यवान् है। समय के बराबर मूल्यवान् अन्य कोई वस्तु नहीं है। समय देने से सब मिलता है

परंतु सब कुछ देने से भी समय नहीं मिलता । धन तिजोरी में संग्रहीत कर सकते हैं परंतु समय तिजोरी में नहीं संजोया जा सकता । ऐसे अमुल्य समय को श्रेष्ठ कार्यों में लगाकर सार्थक करें। सबसे श्रेष्ठ कार्य है सत्पुरुषों का संग, सत्संग ।

भागवत में आता है:

"भगवान के प्रेमी पुरुष का निमेषमात्र का संग उत्तम है। इसके साथ स्वर्ग की या मुक्ति की समानता नहीं की जा सकती।" (1.18.13)

तुलसीदासजी कहते हैं:

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिए तुला एक अंग ।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग ॥

समय को उत्तम कार्य में लगाएँ । निरन्तर सावधान रहने से ही समय सार्थक होगा, नहीं तो यह निरर्थक बीत जायेगा । जिन्होंने समय का आदर किया है वे श्रेष्ठ पुरुष बने हैं, अच्छे महात्मा बने हैं। संसार के भोगों से विमुख होकर, भगवच्चरणों में, परमात्म तत्त्व जानने में उन्होंने समय लगाया है ।

दत्त और सिद्ध का संवाद

[अनुभवप्रकाश]

एक राजा कपिल मुनि का दर्शन, सत्संग किया करता था । एक बार कपिल के आश्रम पर राजा के पहुँचने के उपरान्त विचरते हुए दत्त, स्कन्द, लोमश तथा कुछ सिद्ध भी पहुँचे । वहाँ इन संतजनों के बीच ज्ञानगोष्ठी होने लगी । एक कुमार सिद्ध बोला: "जब मैं योग करता हूँ तब अपने स्वरुप को देखता हूँ।"

दत्त: "जब तू स्वरुप का देखनेवाला हुआ तब स्वरुप तुझसे भिन्न हुआ । योग में तू जो कुछ देखता है सो दृश्य को ही देखता है। इससे तेरा योग दृश्य और तू द्रष्टा है। अध्यात्म में तू अभी बालक है। सत्संग कर जिससे तेरी बुद्धि निर्मल होवे।"

कुमार: "ठीक कहा आपने । मैं बालक हूँ क्योंकि मन, वाणी, शरीर में सर्व लीला करता हुआ भी मैं असंग चैतन्य, हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होता इसलिए बालक हूँ। परंतु योग के बल से यदि मैं चाहूँ तो इस शरीर को त्याग कर अन्य शरीर में प्रवेश कर लूँ । किसीको शाप या वरदान दे सकता हूँ। आयु को न्यून अधिक कर सकता हूँ। इस प्रकार योग में सब सामर्थ्य आता है । ज्ञान से क्या प्राप्ति होती है ?"

दत्त: "अरे नादान ! सभा में यह बात कहते हुए तुझको संकोच नहीं होता ? योगी एक शरीर को त्यागकर अन्य शरीर को ग्रहण करता है और अनेक प्रकार के कष्ट पाता है । ज्ञानी इसी शरीर में स्थित हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यंत को अपना आपा जानकर पूर्णता में प्रतिष्ठित होता है । वह एक काल में ही सर्व का भोक्ता होता है, सर्व जगत पर आज्ञा चलानेवाला चैतन्यस्वरुप होता है । सर्वरुप भी आप होता है और सर्व से अतीत भी आप होता है । वह सर्वशक्तिमान होता है और सर्व अशक्तिरुप भी आप होता है । सर्व व्यवहार करता हुआ भी स्वयं को अकर्ता जानता है।

सम्यक् अपरोक्ष आत्मबोध प्राप्त ज्ञानी जिस अवस्था को पाता है उस अवस्था को वरदान, शाप आदि सामर्थ्य से संपन्न योगी स्वप्न में भी नहीं जानता ।"

कुमार: "योग के बल से चाहूँ तो आकाश में उड़ सकता हूँ।"

दत्त: "पक्षी आकाश में उड़ते फिरते हैं, इससे तुम्हारी क्या सिद्धि है?"

कुमार: "योगी एक एक श्वास में अमृतपान करता है, 'सोऽहं' जाप करता है, सुख पाता है।"

दत्त: "हे बालक ! अपने सुखस्वरुप आत्मा से भिन्न योग आदि से सुख चाहता है? गुड़ को भ्रांति होवे तो अपने से पृथ्क् चणकादिकों से मधुरता लेने जाय । चित्त की एकाग्रतारुपी योग से तू स्वयं को सुखी मानता है और योग के बिना दु:खी मानता है? ज्ञानी योग अयोग दोनों को अपने दृश्य मानता है। योग अयोग सब मन के ख्याल हैं। योगरुप मन के ख्याल से मैं चैतन्य पहले से ही सुखरुप सिद्ध हूँ। जैसे, अपने शरीर की प्राप्ति के लिए कोई योग नहीं करता क्योंकि योग करने से पहले ही शरीर है, उसी प्रकार सुख के लिए मुझे योग क्यों करना पड़े ? मैं स्वयं सुखस्वरुप हूँ।"

कुमार: "योग का अर्थ है जुड़ना । यह जो सनकादिक ब्रह्मादिक स्वरुप में लीन होते हैं सो योग से स्वरुप को प्राप्त होते हैं।"

दत्त: "जिस स्वरुप में ब्रह्मादिक लीन होते हैं उस स्वरुप को ज्ञानी अपना आत्मा जानता है । हे सिद्ध ! मिथ्या मत कहो । ज्ञान और योग का क्या संयोग है ? योग साधनारुप है और ज्ञान उसका फलरुप है । ज्ञान में मिलना बिछुड़ना दोनों नहीं । योग कर्त्ता के अधीन है और क्रियारुप है।"

कपिल: “आत्मा के सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानरुपी योग सर्व पदार्थों का जानना रुप योग हो जाता है। केवल क्रियारुप योग से सर्व पदार्थों का जानना नहीं होता, क्योंकि अधिष्ठान के ज्ञान से ही सर्व कल्पित पदार्थों का ज्ञान होता है ।

आत्म अधिष्ठान में योग खुद कल्पित है । कल्पित के ज्ञान में अन्य कल्पित का ज्ञान होता है । स्वप्नपदार्थ के ज्ञान से अन्य स्वप्नपदार्थों का ज्ञान नहीं परंतु स्वप्नदृष्टा के ज्ञान से ही सर्व स्वप्नपदार्थों का ज्ञान होता है ।

अतः अपनेको इस संसाररुपी स्वप्न के अधिष्ठानरुप स्वप्नदृष्टा जानो।”

सिद्धों ने कहा : “तुम कौन हो?”

दत्त: “तुम्हारे ध्यान अध्यान का, तुम्हारी सिद्धि असिद्धि का मैं दृष्टा हूँ।”

राजा: “हे दत्त ! ऐसे अपने स्वरुप को पाना चाहें तो कैसे पावें?”

दत्त: “प्रथम निष्काम कर्म से अंतः करण की शुद्धि करो। फिर सगुण या निर्गुण उपासनादि करके अंतः करण की चंचलता दूर करो । वैराग्य आदि साधनों से संपन्न होकर शास्त्रोक्त रीति से सद्गुरु के शरण जाओ । उनके उपदेशामृत से अपने आत्मा को ब्रह्मरुप और ब्रह्म को अपना आत्मारुप जानो । सम्यक् अपरोक्ष आत्मज्ञान को प्राप्त करो ।

हे राजन् ! अपने स्वरुप को पाने में देहाभिमान ही आवरण है। जैसे सूर्य के दर्शन में बादल ही आवरण है। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति में, भुत भविष्य वर्तमान काल में, मन वाणीसहित जितना प्रपंच है वह तुझ चैतन्य का दृश्य है । तुम उसके दृष्टा हो । उस प्रपंच के प्रकाशक चिद्घन देव हो ।”

अपने देवत्व में जागो । कब तक शरीर, मन और अंत : करण से सम्बन्ध जोड़े रखोगे ? एक ही मन, शरीर, अंत : करण को अपना कब तक माने रहोगे? अनंत अनंत अंत : करण, अनंत अनंत शरीर जिस चिदानन्द में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं वह शिवस्वरुप तुम हो । फूलों में सुगन्ध तुम्हीं हो । वृक्षों में रस तुम्हीं हो । पक्षियों में गीत तुम्हीं हो । सूर्य और चाँद में चमक तुम्हारी है । अपने "सर्वोऽहम्" स्वरुप को पहचानकर खुली आँख समाधिस्थ हो जाओ । देर न करो । काल कराल सिर पर है ।

ऐ इन्सान ! अभी तुम चाहो तो सूर्य ढलने से पहले अपने जीवनतत्त्व को जान सकते हो । हिम्मत करो ... हिम्मत करो ...।

ॐ ॐ ॐ

बार बार इस पुस्तक को पढ़कर ज्ञान वैराग्य बढ़ाते रहना । जब तक आत्म साक्षात्कार न हो, तब तक आदरसहित इस पुस्तक को विचारते रहना |

चिन्तन कणिका

अशोभन स्त्री आदि में शोभनबुद्धि, असत्य प्रपंच में सत्य का अध्यास, सत्य आत्मा में असत्य का अध्यास इत्यादि विपरीत भावना से सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्रतिबद्ध हो जाता है ।

अग्नि में राग द्वेष नहीं है । उसके पास जो जाता है उसकी ठंड दूर होती है, अन्य की नहीं । इसी प्रकार जो ईश्वर के शरण जाता है उसका बन्धन कटता है, अन्य का नहीं। जिसके चित्त में राग द्वेष है, उसमें ईश्वर की विशेषता अभिव्यक्त नहीं होती ।

जिसको वैराग्य न हो, श्रद्धा न हो वह यदि कर्म का त्याग करे तो विक्षेपरहित नहीं हो सकता । जैसे प्रमादी, बहिर्मुख, पशु समान लोग लड़ाई झगड़े में राजी रहते हैं वैसे संन्यासी भी कर्मदोषवाले देखे जाते हैं। इसलिए बिना वैराग्य के संन्यास से निष्काम कर्म का आचरण श्रेष्ठ है । बिना श्रद्धा और परमात्मतत्त्व चिन्तन के लिया हुआ संन्यास ब्रह्मपद की प्राप्ति नहीं कराता।

मरुभूमि का जल धीरे धीरे नहीं सूखता है, उसी प्रकार माया भी धीरे धीरे नष्ट नहीं होती । मरुभूमि के जल को 'मरुभूमि का जल' जानने मात्र से उसका अभाव हो जाता है उसी प्रकार माया का स्वरुप जानने मात्र से माया का अभाव हो जाता है ।

संसार की सब चीजें बदल रहीं हैं, भूतकाल की ओर भाग रहीं है और आप उन्हें वर्त्तमान में टिकाये रखना चाहते हैं? यही जीवन के दुःखों की मूल ग्रंथि है । आप चेतन होने पर भी जड़ वस्तु को छोड़ने से इन्कार करते हैं? दृष्टा होने पर भी दृश्य में उलझे हुए हैं?

जब आप चाहते हैं कि 'हमें अमुक वस्तु अवश्य मिले अथवा हमारे पास जो है वह कभी बिगड़े नहीं, तभी हम सुखी होंगे' तो आप अपने स्वरुप चेतन को कहीं न कहीं बाँध रखना चाहते हैं।

साधना के मार्ग में, परम लक्ष्य की प्राप्ति में साधक के लिए देहात्मबुद्धि, देह में आसक्ति एक बड़ी ग्रंथि है । इस ग्रंथि को काटे बिना, मोहकलिल को पार किये बिना कोई साधक सिद्ध नहीं बन सकता । सदगुरु के बिना यह ग्रंथि काटने में साधक समर्थ नहीं हो सकता ।

वेदान्त शास्त्र यह नहीं कहता कि 'अपने आपको जानो ।' अपने आपको सभी जानते हैं । कोई अपने को निर्धन जानकर धनी होने का प्रयत्न करता है, कोई अपनेको रोगी जानकर निरोग होने को इच्छुक है । कोई अपनेको नाटा जानकर लम्बा होने के लिए कसरत करता है तो कोई अपनेको काला जानकर गोरा होने के लिए भिन्न भिन्न नुस्खे आजमाता है ।

नहीं, वेदान्त यह नहीं कहता । वह तो कहता है : 'अपने आपको ब्रह्म जानो ।' जीवन में अनर्थ का मूल सामान्य अज्ञान नहीं अपितु अपनी आत्मा के ब्रह्मत्व का अज्ञान है । देह और सांसारिक व्यवहार के ज्ञान अज्ञान से कोई खास लाभ हानि नहीं है परंतु अपने ब्रह्मत्व के अज्ञान से घोर हानि है और उसके ज्ञान से परम लाभ है ।

प्रार्थना

हे मेरे प्रभु ... !

तुम दया करना । मेरा मन ... मेरा चित्त तुममें ही लगा रहे ।

अब ... मैं कब तक संसारी बोझों को ढोता फिरूँगा ... ? मेरा मन अब तुम्हारी यात्रा के लिए ऊर्ध्वगामी हो जाये ... ऐसा सुअवसर प्राप्त करा दो मेरे स्वामी ... !

हे मेरे अंतर्यामी ! अब मेरी ओर जरा कृपादृष्टि करो ... । बरसती हुई आपकी अमृतवर्षा में मैं भी पूरा भीग जाऊँ ...। मेरा मन मयूर अब एक आत्मदेव के सिवाय किसीके प्रति टहुँकार न करे ।

हे प्रभु ! हमें विकारों से, मोह ममता से, साथियों से बचाओ ...अपने आपमें जगाओ ।

हे मेरे मालिक ! अब ... कब तक ... मैं भटकता रहूँगा ? मेरी सारी उमरिया बीती जा रही है ... कुछ तो रहमत करो कि अब ... आपके चरणों का अनुरागी होकर मैं आत्मानन्द के महासागर में गोता लगाऊँ ।

ॐ शांति ! ॐ आनंद !!

सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम्

आखिर यह सब कब तक ... ? मेरा जीवन परमात्मा की प्राप्ति के लिए है, यह क्यों भूल जाता हूँ ?

मुझे ... अब ... आपके लिए ही प्यास रहे प्रभु ... !

अब प्रभु कृपा करौं एहि भाँति ।

सब तजि भजन करौं दिन राती ॥